6/-
ऋषि प्रसाद
वर्ष : ६ अंक : ३९ मार्च १९९६

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ६
अंक : ३९
९ मार्च १९९६
सम्पादक : के. आर. पटेल
मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत, नेपाल व भूटान में
वार्षिक : द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. 30/-
मासिक संस्करण हेतु : रू. 50/-
आजीवन : द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. 300/-
मासिक संस्करण हेतु : रू. 500/-
विदेशों में
वार्षिक : द्विमासिक संस्करण हेतु : US $ 18
मासिक संस्करण हेतु : US $ 30
आजीवन : द्विमासिक संस्करण हेतु : US $ 180
मासिक संस्करण हेतु : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : के. आर. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा,
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५ ने
विनय प्रिन्टिंग प्रेस, मीठाखली एवं भार्गवी प्रिन्टर्स,
राणीप, अहमदाबाद में छपाकर प्रकाशित किया।

इस अंक में...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

चे...टी...चं...ड...

चेतन तत्त्व से महक रहे, ये धरती और आकाश।
नूरे नजर में रम रहा वही दिव्य प्रकाश॥
जड़ जीव में जलवा वही, कर लें दृढ़ विश्वास।
साहिब सदा है पास 'साक्षी' कर ले तू अहसास॥

टिक गया निज स्वरूप में पा लिया गुरु का ज्ञान।
रम गया मनवाँ राम में परम तत्त्व का भान॥
समबुद्धि, सद्‌भावना से, किया है जन कल्याण।
योगी साचा है वही, धरे न मन अभिमान॥

चंचल चित्त स्थिर रहे, हो आत्मा में अनुराग।
धीर वीर कर्मवीर हैं, कर दिया अहं का त्याग॥
योग तपस्या, शौर्य संग, विषयों से वैराग्य।
समदर्शी साधू वही, जिसे शोक न हर्ष विषाद॥

डर नहीं मौत, वियोग का, पाया निर्भय नाम।
गुरु-चरणों में बैठ कर, कर लिया हरि का ध्यान॥
मोह माया से परे, पा लिया आतमज्ञान।
ब्रह्मानन्द में रम रहा, दिव्य स्वरूप महान्॥

झू...ले...ला...ल...

झूम लिया हरिध्यान में, रही न कोई चाह।
गहरा सागर ज्ञान का, मिले न कोई थाह॥
गुरुदेव के साये में, मिल गई सत्य की राह।
फिर कैसे गुमराह हो जिस मन में हरि वास॥

ले सदा दुःख-दर्द दीनों के, सदैव कर उपकार।
कर भलाई सर्व की, न किसी को कर लाचार॥
हर नूर में, हरि हैं बसे, हर दिल में तू कर दीदार।
गुरु-चरण में बैठ कर, निज-आत्म का कर विचार॥

लाल की लाली से महका, सारा ये जहान है।
रंगत वही, धड़कन वही, हर जीव में वही प्राण है॥
नूर वही, नजरें वही, वही जिगर और जान है।
नाम रूप जुदा सही चैतन्य तत्त्व समान है॥

लगन लगी हो राम की, दिल में हरि का ध्यान।
प्रभु प्रेम की प्यास हो, चित्त में गुरु का ज्ञान॥
जग गया स्व स्वरूप में, हो गया निज का भान।
भेद भरम संशय मिटा, पाया 'साक्षी' पद निर्वाण।

- जानकी ए. चंदनानी ('साक्षी')
अहमदाबाद

❀

राम का दर्शन पाएगा

रामनाम के साबुन से, जो मन की मैल धुलाएगा।
निर्मल मन के शीशे में, वह राम का दर्शन पाएगा॥

यह शरीर मानव का जो, प्रभु कृपा से पाया है।
झूठे जग-बन्धन में फँसके, उसको क्यों बिसराया है॥
रामनाम का महामंत्र यह साथ तिहारे आएगा।
रामनाम के साबुन से जो मन की मैल धुलाएगा॥

झूठ, कपट, निंदा को त्यागो, हर एक से तुम प्यार करो।
घर आये सत्संगी की, सेवा से न इन्कार करो॥
पता नहीं किस वेष में आकर, नारायण मिल जाएगा।
हरि नाम के साबुन से जो मन की मैल धुलाएगा॥

झूठी है सब भक्ति तेरी, जब दिल में विश्वास नहीं।
मंजिल का पाना है क्या ? जब दीपक में प्रकाश नहीं॥
निश्चय है तो भवसागर से बेड़ा पार हो जाएगा।
गुरु नाम के साबुन से जो मन की मैल धुलाएगा॥

रोम-रोम में रमा है तेरे, पलभर तुझसे दूर नहीं।
देख सके न आँखें उसको, जिन आँखों में नूर नहीं॥
देखेगा मन-मन्दिर में जो, ज्ञान के दीप जलाएगा।
हरिनाम की साबुन से जो मन की मैल धुलाएगा॥

माया का अभिमान है झूठा, यह तो आनी-जानी है।
राजा रंक हुए कई जग में, कितनों ही की कहानी है॥
गया वक्त फिर हाथ न आवे, सिर धुनि-धुनि पछताएगा।
रामनाम के साबुन से जो मन की मैल धुलाएगा॥

- हरगोविन्दसिंह ब्रह्मवंशी (साहित्यभूषण)
१८८, लाडगंज (कछियाना), जबलपुर (म.प्र.)

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

उपनिषद् में आता है :

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

जहाँ मन और वाणी की गति नहीं है, मन और वाणी जहाँ से लौटकर आ जाते हैं उस परम पद में प्रतिष्ठित संतों की, महापुरुषों की जो सेवा करता है, सभी उसके भाग्य की सराहना करते हैं । देवराज इन्द्र तक उनका सम्मान करते हैं ।

शुक्र भी ब्रह्मज्ञानी संतपुरुष की सेवा करता था । एक दिन शुक्र ध्यान में बैठा था । ध्यान में जितनी एकाग्रता अधिक होती है, उतने ही अधिक दिव्य अनुभव होने लगते हैं । सूक्ष्म जगत् की चीजें भी ध्यान में दिखने लगती हैं । एक बार शुक्र ने ध्यान में विश्वाची नाम की एक अप्सरा को देखा और अप्सरा के सौन्दर्य पर मोहित हो गया । अब उसका मन ध्यान की विश्रांति छोड़कर भोग के भंवर में घूमने लगा । वह पूर्ण ज्ञानी भी नहीं था और अज्ञानी-मूढ़ भी नहीं था अपितु बीच में ही दोलन कर रहा था । फलतः शुक्र सूक्ष्म शरीर से उस अप्सरा को पाने के लिये विह्वल हो गया ।

अब उसने सोचा कि क्या किया जाये ? यदि अप्सरा से मिलना है तो पहले देवराज इन्द्र से मिलना पड़ेगा क्योंकि वह अप्सरा इन्द्र के राज्य में रहती है ।

शुक्र इन्द्र के दरबार में पहुँच गया । देवता लोग समझ गये कि शुक्र क्यों आया है । फिर भी, इन्द्र ने अपने सिंहासन से उतरकर विश्वाची अप्सरा के मोह में पड़े शुक्र का अभिवादन किया और उच्च सिंहासन पर बैठाकर अर्घ्य-पाद्य से पूजन किया क्योंकि शुक्र किसी ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का शिष्य था एवं उनके सान्निध्य में रहता था । जिन देवताओं का आशीर्वाद लेने के लिए लोग गिड़गिड़ाते हैं उन्हीं देवताओं के राजा इन्द्र स्वयं ब्रह्मज्ञानी महापुरुष के शिष्य शुक्र का पूजन करते हैं । ब्रह्मज्ञान की कितनी महिमा है ! उसकी कितनी बलिहारी है ! श्रीरामचरितमानस में भी 'नवधाभक्ति' के वर्णन के प्रसंग में आता है :

प्रथम भगति संतन कर संगा ।
दूसरि भगति मम कथा प्रसंगा ॥

जिसका मन परमात्मा में ठीक से लगा हो उन्हीं महापुरुषों को शास्त्रों में संत कहा गया है और ऐसे संतों का संग ही प्रथम प्रकार की भक्ति है ।

एक बार गंगा मैया ने ब्रह्माजी से कहा : ''सब लोग गंगेहर करके मुझमें स्नान करते हैं और अपने पाप मुझमें छोड़ जाते हैं । इससे तो मैं पाप से लद जाऊँगी । अतः मेरे लिए कोई उपाय बताइए ।''

''बेटी ! दूसरे लोगों द्वारा तुझमें छोड़े गये पाप किसी आत्मसाक्षात्कारी संत-पुरुष के तुझमें एकबार स्नान करने मात्र से नष्ट हो जायेंगे ।'''

ब्रह्माजी अपने कमंडल के जल से तीन आचमन लेकर, पद्मासन में बैठकर कुछ देर के लिए परमात्मा में शान्त हो गये । कुछ क्षणों के बाद आँखें खोलकर बोले :

''बेटी ! जैसे पानी दूसरी चीजों को साफ करता है और पानी की सफाई फिटकरी से होती है ऐसे ही दूसरे लोगों द्वारा तुझमें छोड़े गये पाप किसी आत्मसाक्षात्कारी संत-पुरुष के तुझमें एकबार स्नान करने मात्र से नष्ट हो जायेंगे ।''

अरे ! तीर्थ को तीर्थत्व भी तभी उपलब्ध होता है जब भगवान या भगवद्स्वरूप को जाने हुए ब्रह्मवेत्ताओं के चरण वहाँ पड़ते हैं । जिन्होंने आत्मतीर्थ को प्राप्त कर लिया है ऐसे संत जहाँ भी जाते हैं वह स्थान

तीर्थ हो जाता है ।

ऐसे आत्मज्ञानी, आत्मसाक्षात्कारी महापुरुष को जिसने गुरु के रूप में प्राप्त कर लिया हो उसके सौभाग्य का क्या वर्णन किया जाये ? गुरु के बिना तो ज्ञान पाना असंभव ही है । कहते हैं :

ईश कृपा बिन गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान ।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहिं वेद पुरान ॥

बस, ऐसे गुरुओं में हमारी श्रद्धा हो जाये । श्रद्धावान् को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है । गीता में भी आता है :

श्रद्धावाँल्लते ज्ञानं तत्परः
संयतेन्द्रियः ।

अर्थात् जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है । जिसके जीवन में संयम और श्रद्धा है तो फिर ऐसा कौन-सा मनुष्य है कि भवसागर से पार न हो ? उसे ज्ञान की प्राप्ति न हो ? परमात्म-पद में स्थिति न हो ?

तीर्थ को तीर्थत्व भी तभी उपलब्ध होता है जब भगवान या भगवद्स्वरूप को जाने हुए ब्रह्मवेत्ताओं के चरण वहाँ पड़ते हैं । जिन्होंने आत्मतीर्थ को प्राप्त कर लिया है ऐसे संत जहाँ भी जाते हैं वह स्थान तीर्थ हो जाता है ।

जिसकी श्रद्धा नष्ट हुई, समझो उसका सब कुछ नष्ट हो गया । इसलिए ऐसे व्यक्तियों से बचें, ऐसे वातावरण से बचें जहाँ हमारी श्रद्धा और संयम घटने लगे । जहाँ कहीं अपने धर्म के प्रति, आत्मज्ञान के प्रति, महापुरुषों के प्रति हमारी श्रद्धा डगमगाये ऐसी परिस्थितियों से अपने को बचाओ । श्रद्धा का धागा बड़ा पतला है । अतः उसकी रक्षा करो । वैसे तो श्रद्धा का धागा पतला है लेकिन भवसागर से पार उतारने की ताकत भी उसमें है । पतला धागा आँखों से नहीं दिखता है, फिर भी बड़ा काम करता है । किन्तु वही धागा यदि टूट जाये तो सर्वनाश हो जाता है ।

श्रद्धा का धागा पतला है लेकिन भवसागर से पार उतारने की ताकत भी उसमें है । पतला धागा आँखों से नहीं दिखता है फिर भी बड़ा काम करता है । किन्तु यही धागा यदि टूट जाये तो सर्वनाश हो जाता है ।

यह तो आदिकाल से चला आ रहा है कि इस धराधाम पर जब भी कोई संत-भगवंत अवतरित हुए हैं तो उनके प्रति हमारी श्रद्धा डिगानेवाले लोग भी पैदा हुए ही हैं । संतों को बदनाम करने की पूरी-पूरी साजिशें की गई हैं । सुकरात को जहर किसने दिया ? जीसस को क्रॉस पर किसने चढ़ाया ? महावीर को खीलें किसने ठोकीं ? बुद्ध पर थूका किसने ? कबीर की निंदा किसने की ? शुकदेवजी का अपमान किसने किया ? नानक पर कंकर-पत्थरों की बरसात किसने की ? मन्सूर को शूली पर किसने चढ़ाया...? निंदकों और अज्ञानियों ने ।

जिसको ज्ञान के प्रति आदर है, जिसको महापुरुषों के प्रति श्रद्धा है उनके द्वारा कभी ऐसा कार्य नहीं हो सकता । जब भी बेवफाई की, तो अज्ञानियों ने ही की है । ज्ञानी ने कभी किसीसे बेवफाई नहीं की । ज्ञानी करेगा भी क्यों ? बेवफाई वह करता है जिसे कुछ स्वार्थ है, कुंछ तुच्छ सुखों की अभिलाषा है । ज्ञानी का तो कोई स्वार्थ होता ही नहीं और सुख की उसे आकांक्षा भी नहीं क्योंकि वह स्वयं सुख का सागर है, सुख बाँटनेवाला है ।

ईश्वर के चरणों में ऐसी ही प्रार्थना करो कि संतों के प्रति हमारी प्रीति नित्य बढ़ती रहे, उनमें और उनके दैवी कार्यों के प्रति हमारी श्रद्धा में वृद्धि होती ही रहे । हमें लाख डिगानेवाले मिलें तो भी हम न डिगें । ऐसी दृढ़ता से ही हमारा कल्याण संभव है, अन्यथा अपने कल्याण का कोई दूसरा उपाय नहीं है ।

निर्लिप्त जीवन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती ।
सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥

संत तुलसीदासजी कहते हैं : 'हे प्रभु ! तू मुझ पर ऐसी कृपा करना कि सब कुछ छोड़कर मैं दिन-रात तेरा ही भजन करूँ ।'

संत के इन वचनों में 'सब' का आशय सभी प्रकार के दोषों से है । महाभारत में भीष्म पितामह व युधिष्ठिर के मध्य मनुष्य के तेरह दोषों यथा- क्रोध, काम, शोक, मोह, विधित्सा, परासुता, मद, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, निन्दा, दोषदृष्टि व कंजूसी की उत्पत्ति, वृद्धि व निवृत्ति विषयक विस्तृत चर्चा हुई है । ('ऋषि प्रसाद'- अंक ३७, जनवरी १९९६ में यह विस्तार से प्रकाशित हुई है ।)

संत तुलसीदासजी के वचनों में आये हुए 'सब' अर्थात् हम शरीरों में जो अहम् करते हैं उसे छोड़कर, शरीर को 'मैं' मानना छोड़कर 'जो कुछ कर्म करूँ वह सब तेरी बन्दगी हो जाय' इस प्रकार का भावार्थ यहाँ लेना है ।

शरीर को 'मैं' मानने से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, उद्वेग, भय, चिन्ता, ईर्ष्या आदि दोष उत्पन्न होते हैं और हमारे चित्त में इन दोषों के रहते हम चाहे कितना भी भजन क्यों न करें, आध्यात्मिक ऊँचाइयों को छूना मुश्किल है ।

शरीर को 'मैं' मानने से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, उद्वेग, भय, चिन्ता, ईर्ष्यादि दोष उत्पन्न होते हैं और हमारे चित्त में इन दोषों के रहते हम चाहे कितना भी भजन क्यों न करें, आध्यात्मिक ऊँचाइयों को छूना मुश्किल है और शरीर को 'मैं' मानने का दोष निकल जाने पर आध्यात्मिक ऊँचाइयों को छूना हमारे लिये आसान है जिससे नित्य नवीन रस भी सहज में प्रगट होता है ।

श्रीमद्भागवत में गौकर्ण अपने पिता आत्मदेव ब्राह्मण को वैराग्य का उपदेश देते हुए कहता है :

असारः खलु संसारो दुःखरोगविमोहकः।
सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥

'पिताजी ! यह संसार असार है । यह अत्यन्त दुःखरूप और मोह में डालनेवाला है । पुत्र किसका ? धन किसका ? स्नेहवान पुरुष रात-दिन दीपक के समान जलता रहता है ।'

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य : ४.७४)

न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥

'सुख न तो इन्द्र को है और न चक्रवर्ती राजा को ही । सुख तो केवल विरक्त, एकान्तजीवी मुनि को है ।' (श्रीमद्भागवत माहात्म्य : ४.७५)

''पिताजी ! आप अब घर-संसार छोड़कर वनगमन करें । इस घर का मोह त्यागें । विवेकपूर्वक विचार करके यह सब त्याग दें अन्यथा काल जबरदस्ती छुड़वा देगा । पिताजी ! इस शरीर में हाड़, माँस और रुधिर है । इसे अपना मानना छोड़ दें, स्त्री-पुत्रादि की ममता छोड़ दें । यह संसार क्षणभंगुर है । इसमें से किसी भी चीज को अपना मानकर उसमें राग और मोह न करें ।

वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ।

बस, एकमात्र वैराग्य-रस के रसिक होकर भगवान की भक्ति में लगे रहें ।

यह शरीर भी आपका नहीं है क्योंकि इसे आप सदैव अपना मानकर नहीं रख सकेंगे । फिर यहाँ दूसरा

तो अपना है ही क्या ? इसलिये हे पिताजी ! अब आप गंगातट पर जाकर भगवान का सहारा लेकर भगवन्मय जीवन व्यतीत करें और अपने चैतन्य आत्मदेव को पहचानें ।''

महाभारत के शांतिपर्व में ऐसा ही एक सत्पात्र पुत्र देवशर्मा अपने पिता से कहता है : ''इस शरीर की जरावस्था आ जाय, मौत आकर शरीर को ग्रास बना ले और मैं अनाथ होकर मर जाऊँ उसके पहले मुझे परमात्मा की प्राप्ति कर लेने दें । जिस प्रकार हिरन जंगल में हरा-हरा घास चबाते हों और अचानक सिंह आकर उन पर हमला करे तो उनकी क्या हालत हो जाय ? इसी प्रकार संसार के मनुष्य तेरा-मेरा करके मोह-माया का चिन्तन करते हैं और कालरूपी सिंह आकर कब किसे उठाकर ले जाय उसका कुछ पता नहीं है । इसलिये मुझे बाल्यकाल से ही भजन करने दीजिये ।

दुर्लभो मानुषो देहो: देहिनां क्षणभंगुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥

मनुष्य शरीर दुर्लभ और क्षणभंगुर है । ऐसे क्षणभंगुर देह में भगवान के भक्त और संतों का मिलना तो उससे भी दुर्लभ है । ऐसी दुर्लभ अवस्था मुझे प्राप्त हुई है । अतः हे पिताजी ! आप मुझे इस मौके का लाभ लेने दें । यह जीवन बहती हुई धारा के समान है । जिस प्रकार बहती नदी की धारा समुद्र से जा मिलती है, उसी प्रकार जीवन की आयुष्य-धारा एक दिन मौत के सागर में जा मिलती है । यह जीवन मृत्यु के सागर में समा जाय उसके पहले मुझे अमर आत्मा के किनारे पहुँच जाने दें । मेरी आँख सदा के लिये बंद हो जाय उसके पहले मुझे मेरे प्रभु का ध्यान कर लेने दें । मेरे हृदय की धड़कनें बँद हो जाय उसके पहले मेरे हृदयेश्वर प्रभु का अनुभव मुझे कर लेने दें । मेरा शरीर वृद्ध हो जाए... आँखें कमजोर हो जायें उसके पहले, कान कमजोर हो जाय उसके पहले और पैरों की शक्ति क्षीण होने लगे उसके पहले मैं संतदर्शन करके हरिकथा सुन लूँ और हरि को पाने की परमेश्वरीय यात्रा कर लूँ । अतैव हे पिताजी ! मैं आपसे कुछ नहीं माँगता हूँ, केवल थोड़े-से समय की याचना करता हूँ, जिससे मैं अपने आत्मा का उद्धार कर सकूँ । अपनी इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में तथा बुद्धि को बुद्धिदाता परमात्मा में लीन करने से मेरी मति ऋतम्भरा प्रज्ञा हो जाएगी । फिर मैं इच्छारहित होकर संसार में विचरण करूँगा लेकिन मुझे संसार का किंचित् भी लेप नहीं होगा । अभी मैं कुछ करता हूँ तो मुझे कर्त्ता और भोक्ता का भाव पकड़ लेता है । कर्त्ता और भोक्ता के भाव से हम जो कुछ कर्म करते हैं वह बंधनरूप हो जाता है ।

''पिताजी ! आप देवों के साथ मेरा विवाह करवाएँगे लेकिन देव भोगी होते हैं । मेरे शरीर का उपयोग भोग के लिये होगा और मृत्यु के समय तो मुझे अकेला ही मरना पड़ेगा ।''

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती ।
सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥

'सब' कर्त्ता-भोक्ता भाव में छुपा हुआ है । आँख देखती है तो अहम् कहता है कि 'मैं देखता हूँ' । कान सुनते हैं तो अहम् बोलता है कि 'मैं सुनता हूँ' । जिह्वा बोलती है तो अहम् कहता है कि 'मैं बोलता हूँ'। मन सोचता है तो अहम् बोलता है कि 'मैं सोचता हूँ' । बुद्धि निर्णय करती है तो अहम् बोलता है कि 'मेरा निर्णय है' । लेकिन वास्तव में 'मैं कौन हूँ' इसका हमें पता ही नहीं है ।

जिस प्रकार केले के वृक्ष का तना पत्तों का समूह होने से हमें मोटा दिखता है, उसी प्रकार इन्द्रियों में अहम् करके जीव अपने को कुछ मानता है लेकिन अहंकार को खोजेंगे तो कुछ निकलेगा ही नहीं, इसलिये मुझे मेरे आत्मदेव को खोजने दो ।''

पड़ा रहेगा माल खजाना,
छोड़ त्रिया सुत जाना है ।
कर सत्संग अभी से प्यारे,
नहीं तो फिर पछताना है ॥

''हे पिताजी ! इस देह को चाहे जितना भी खिलाएँगे-

पिलाएँगे लेकिन अंत में उसे अग्नि में ही जलाना है । इस शरीर को अग्निदान मिले, इससे पहले मैं आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लूँ । जरावस्था में आँखों की देखने की शक्ति क्षीण हो जाय, कान सुन न सकें, पैरों में चलने की शक्ति कम हो जाय, परिजन हमारी हँसी उड़ावें उसके पहले मैं अपने परमात्मा को प्राप्त कर लूँ । इस शरीर को परिजन जला दें, उसके पहले मैं शरीर में छुपे हुए अहंकार को अपने गुरुदेव की ज्ञानाग्नि में जलाकर स्वाहा कर दूँ और निरहंकार नारायण के दर्शन कर लूँ ।''

ऐसी ही बात दक्ष प्रजापति की मानसपुत्री केतकी अपने पिताजी से कहती है : ''पिताजी ! मैं सयानी होने लगी हूँ, इसलिये आप मेरी शादी करवाने का चिन्तन करते हैं । आप किसी देव के साथ मेरा विवाह करवाएँगे लेकिन देव भोगी होते हैं । मेरे शरीर का उपयोग भोग के लिये होगा और मृत्यु के समय तो मुझे अकेला ही मरना पड़ेगा । पति मुझे छोड़कर जाएगा अथवा तो मैं पति को छोड़कर जाऊँगी । पिछले जन्म में भी मेरा कोई पति रहा होगा । ऐसे मेरे कितने ही जन्म बीत गये होंगे । अब आपके घर मेरा जन्म हुआ है तो किसी देव के साथ मेरा विवाह करवाकर झंझट में फँसाने की चिन्ता छोड़कर आप मुझे देवों के देव परमात्मदेव की भक्ति करने दें । अब मुझे विकारों में नहीं फँसना है बल्कि 'सब' तजकर भजन करना है ।''

दक्ष प्रजापति ने पुत्री को बहुत समझाया लेकिन पुत्री की तीव्र जिज्ञासा देखकर वे सहमत हो गये ।

केतकी कहती है : ''पिताजी ! आप मुझे आशीर्वाद दीजिये । मैं परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये तप करने जाती हूँ ।''

पिता के आशीर्वाद लेकर केतकी उत्तराखंड की ओर निकल पड़ी । वह युग सात्त्विक युग था । वर्तमान युग की तरह खान-पान की दुर्दशा तथा आँखों में पाप नहीं था । लोगों की बुद्धि पवित्र थी । केतकी बद्रीनाथ की तरफ देवगंगा में झोपड़ी बाँधकर रहने लगी । वह प्रात:काल उठकर परमात्मा से प्रार्थना करती : 'हे प्रभु ! मैं अपनी आत्मा का उद्धार कैसे करूँ ? हे अन्तर्यामी आत्मदेव ! तू ही मुझे प्रेरणा देना ।'

केतकी ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ब्रह्मचिन्तन करती थी इसलिये उसका ब्रह्मतेज बढ़ता जाता था । शुद्ध, प्राकृतिक वातावरण में रहती हुई वह प्राणायाम करती तथा कन्दमूल का ही आहार लेती थी ।

केतकी ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ब्रह्मचिन्तन करती थी इसलिये उसका ब्रह्मतेज बढ़ता जाता था । शुद्ध, प्राकृतिक वातावरण में रहती हुई वह प्राणायाम करती तथा कन्दमूल का ही आहार लेती थी ।

प्राचीनकाल में त्रिकाल संध्या का विधान था । त्रिकाल संध्या में प्राणायाम, प्रणव का दीर्घ गुंजन, वैदिक अथवा गुरुप्रदत्त मंत्र का जप साधक की आत्मोन्नति करता है । केतकी भी पूर्ण निष्ठा के साथ त्रिकाल संध्या के इस नियम का पालन करती थी । ऐसा करते-करते कुछ माह बीत गये ।

एक बार ईश्वर की आह्लादिनी शक्ति महामाया ने विचार किया कि : 'चलकर केतकी की परीक्षा ली जाय । केतकी का तप बढ़ रहा है लेकिन तप के साथ नम्रता आई है या अहंकार बढ़ा है ?'

जैसे विश्वामित्र का तप बढ़ा था तो साथ-साथ उनमें अहंकार की वृद्धि भी हुई थी किन्तु वशिष्ठजी का तप बढ़ा था तो उनमें मधुर आत्मज्ञान का प्राकट्य हुआ था । वशिष्ठजी को आत्मज्ञान सरलता से समझ में आ गया जबकि विश्वामित्र को ठोकर खाने के बाद समझ में आया था । इसलिये तुलसीदासजी ने कहा है :

सरल सुभाव न मन कुटिलाई ।
जथा लाभ संतोष सदाई ॥

केतकी की परीक्षा लेने के लिये भगवान की महामाया ने गाय का रूप लिया । केतकी तप तो करती है लेकिन उसमें तप का अहंकार उठ खड़ा हुआ है । ईश्वर की महामाया गाय का रूप लेकर केतकी की

झोंपड़ी के आगे 'हम्मा... हम्मा...' करके रम्भाने लगी तो केतकी को हँसी आई ।

उसे अभी तक आत्मप्रकाश नहीं हुआ है कि गाय में भी मेरा ही राम रम रहा है । गाय तीन बार रम्भाई लेकिन उसने गाय का आदर तो नहीं किया अपितु मजाक उड़ाया । गाय फिर दो बार रम्भाई ।

आपमें अहंकार होगा तो दूसरों की मजाक करेंगे और प्रेम होगा तो दूसरों में भी सद्गुण दिखने लगेंगे ।

जब पाँच बार रम्भाने के बाद भी केतकी की समझ नहीं लौटी तो महामाया ने अपना तेजस्वी रूप धारण करके उसे शाप दिया : ''तू अपने को क्या समझती है ? स्त्री में पालनशक्ति और प्रजननशक्ति अर्थात् बालक को जन्म देने की और उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करने की शक्ति है । तू ब्रह्मचारिणी होकर रहती है फिर भी धैर्य धारण नहीं करती और स्वयं को धार्मिक मानती है । अभी तक तेरे अहंकार का विलय नहीं हुआ है अपितु उसमें और अधिक वृद्धि हो रही है । तू पति न होने का अहंकार करती है लेकिन सुन ले : तुझे एक नहीं, पाँच-पाँच पतियों की भार्या बनना पड़ेगा ।''

मानसपुत्री केतकी को शाप देकर आद्यशक्ति अन्तर्धान हो गई । केतकी स्नान करने गई लेकिन उसे आद्यशक्ति का दिया हुआ शाप स्मरण आने लगा : 'एक नहीं, तुझे पाँच-पाँच पतियों की भार्या बनना पड़ेगा । विधाता ! यह क्या ?' स्नान करते-करते उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी ।

सुबह का समय था । इन्द्र, यम, वायु आदि पाँच मित्र घूमने निकले । उन्होंने देखा कि एक सुन्दर तपस्विनी, तेजस्वी सुन्दरी नदी की धारा में रोती हुई खड़ी थी । उसके आँसुओं की प्रत्येक बूँद, जो जल में गिरती थी, सुवर्णमय कमल बन जाती थी । उसे देखकर उनके मन में थोड़ी कामवृत्ति जागृत हुई । मन से तो थोड़ा पाप हुआ लेकिन तन पर काबू रखकर यम ने पूछा : ''तुम्हारे पिताजी कौन हैं ?' तुम कहाँ से आती हो ? तुम मेरे साथ शादी कर लो ।''

तब केतकी ने कहा : ''मैं चिंतित हूँ, शाप से पीड़ित हूँ और आप मुझ अबला से इस तरह की अनुचित बातें करते हैं ?'' इतना कहकर केतकी एक मिनट अनजाने ही अन्तर्यामी परमात्मा में शान्त हो गई । 'मेरा कोई सहारा नहीं है' ऐसा सोचते ही उसका 'सब कुछ' त्याग हो गया । इतने में एक परम तेजस्वी दिव्य योगी पुरुष आये और यम को उन्होंने एक गुफा में बंद कर दिया । एक-एक करके सभी देवताओं ने केतकी के विवाह का प्रस्ताव रखा और वे योगी पुरुष उन सबको गुफा में बंद करते गये । अन्त में इन्द्र ने आकर केतकी से कहा : ''मैं तुम्हें अपनी पटरानी बनाऊँगा ।''

आज बहुत से लोग द्रौपदी के पाँच पति देखकर कहते हैं कि हम दूसरे पति करें तो 'क्या हरकत है ?' यह बात सोचने के पहले हमें यह समझ लेना, जान लेना चाहिये कि द्रौपदी अगले जन्म में कौन थी ।

केतकी : ''आपके पूर्व जो देवता आये थे, उनके जो हाल हुए हैं, क्या आपको भी अपने वैसे ही हाल करने हैं ?''

इन्द्र : ''मेरे मित्र कहाँ गये ?''

केतकी : ''वे सामने गुफा में बंद हैं ?''

''उन्हें किसने बंद किया ?''

''कोई सिद्ध योगी महाराज आकर समाधि में बैठे हैं, उन्होंने बंद किया है ।''

इन्द्रदेव जानते थे कि योगीराज को कैसे प्रसन्न करना है । योगीराज के चरणों में वन्दन करते हुए उन्होंने कहा : ''मैं इन्द्र हूँ । अपने नेत्र खोलकर आप मुझे आशीर्वाद प्रदान करें ।''

तब योगीराज आँखें खोलकर बोले : ''इन्द्र ! तूने मर्यादा की अवहेलना नहीं की है इसलिये मैं तुझे मुक्त करता हूँ । केतकी के लिये तुम पाँचों मित्रों के मन में पाप आ गया था इसलिये देवयोनि से तुम्हारा पतन होगा । केतकी ने अहंकार के कारण गौमातारूपी भगवान की आह्लादिनी शक्ति का अपमान किया था इसलिये

केतकी को भी मनुष्य देह में जन्म धारण करना पड़ेगा । केतकी दूसरे जन्म में द्रौपदी होगी और आप पाँचों देव पाँच पांडव बनोगे ।''

आज बहुत से लोग द्रौपदी के पाँच पति देखकर कहते हैं कि 'हम दूसरे पति करें तो क्या हरकत है ?' यह बात सोचने के पहले हमें यह समझ लेना, जान लेना चाहिये कि द्रौपदी अगले जन्म में कौन थी । द्रौपदी के पाँच पति होने का विधान विधि ने बना दिया था, इसीलिये कुंतीजी के श्रीमुख से निकल गया कि : ''तुम जो लाये हो उसे पाँचों भाई बाँट लो ।''

पांडवों को यह अनर्थ लगा लेकिन वेदव्यासजी ने प्रगट होकर बतलाया कि : ''यह अनर्थ नहीं है । जो होनेवाला होता है वही सत्पुरुषों के श्रीमुख से निकलता है । द्रौपदी कोई साधारण स्त्री नहीं है । विधि को जो करवाना था, वही आपके श्रीमुख से कहला दिया ।''

इस प्रकार शापित केतकी ने द्रौपदी के रूप में अवतार धारण किया तथा भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करते-करते भक्ति को पा लिया । भगवान श्रीकृष्ण उनके साथ ही रहते थे अत: द्रौपदी का दूसरा नाम कृष्णा भी पड़ा ।

स्वत:सिद्ध है कि किया हुआ जप, तप, ध्यान, भजन कभी व्यर्थ नहीं जाता है । द्रौपदी ने केवल एक मिनट 'सब' तजकर भजन किया तो भगवान श्रीकृष्ण का सान्निध्य मिल गया लेकिन जो तीन मिनट 'सब' तजकर भजन करता है उसे कृष्ण-तत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है । हम भजन तो करते हैं लेकिन शरीर में अहंता और सम्बन्धित वस्तु-व्यक्ति में ममता रखकर करते हैं ।

जीव का अहंकार ही महा दु:खदायक है क्योंकि वह अनात्म शरीर में आत्माभिमान कराता है । इन्द्रियाँ अपने विषयों को ग्रहण करती हैं लेकिन अहंकारी विमूढ़ मनुष्य अपने को कर्त्ता मानता है । ऐसे ही मनुष्य सुख-दु:ख भोगते हैं और राग-द्वेष की अग्नि में जलते हैं लेकिन जिसे अनात्म शरीर में अहम् भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि कर्त्तृत्त्व-भोक्तृत्त्व से लिप्त नहीं होती, ऐसे महापुरुष इस अनर्थरूप संसार-बंधन से मुक्त हो जाते हैं ।

❀

प्रभु ! परम प्रकाश की ओर ले चल...

महान चिन्तक ईमर्सन से उसके किसी मित्र ने कहा : ''एक व्यापारी आपकी घोर निन्दा करता है और कई लोग उसके साथ जुड़े हैं ।''

ईमर्सन : ''वह व्यापारी भले ही मेरी निन्दा करे, किन्तु तुम क्यों उसकी निन्दा करते हो ? हमारे पास अनेक अच्छे काम हैं । हमारे सामने जीवन का विकास करने की, सत्त्व के मार्ग पर चलने की बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ पड़ी हैं । उनको छोड़कर ऐसी व्यर्थ की चर्चाओं में समय देने की क्या आवश्यकता ?''

मित्र : ''किन्तु लोग ऐसा बोलते ही क्यों हैं ? दूसरे की निन्दा क्यों करते हैं ?''

ईमर्सन : ''लोगों को जीभ है इसलिए बोलते हैं । उनको अपनी बुद्धि का उपयोग करने की स्वतंत्रता है । उनको यदि अपनी बुद्धि का उपयोग कुएँ में कूदने के लिए करना है, तो उन्हें किस प्रकार रोका जाए ?''

मनुष्य सबकुछ करने के लिए स्वतंत्र है । यदि उसका अधम तत्त्व उत्तम तत्त्व के नियंत्रण में रहे तो ही सच्ची स्वतंत्रता होगी । हमें यह देखना है कि क्या इस नियम का निर्वाह हमारे जीवन में हो रहा है ?

सिंधी जगत के महान तपोनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी संत श्री टेऊंरामजी ने जब अपने चारों ओर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारों को हटाने का प्रयत्न किया, तब अनेकानेक लोग आत्मकल्याण के लिए सेवा में आने लगे । जो अब तक समाज के भोलेपन और अज्ञान का अनुचित लाभ उठा रहे थे, समाज का शोषण कर रहे थे, ऐसे असामाजिक तत्त्वों को तो यह बात पसन्द ही न आई । कुछ लोग डोरा-धागा-तावीज का धन्धा करनेवाले थे तो कुछ शराब, अंडा, माँस, मछली आदि खानेवाले थे तथा कुछ लोग ईश्वर पर विश्वास न करनेवाले एवं संतों की विलक्षण कृपा, करुणा व सामाजिक उत्थान के उनके दैवी कार्यों को न समझकर समाज में अपने को मान की जगह प्रतिष्ठित करने की इच्छावाले क्षुद्र लोग थे । (क्रमश:)

प्रेमाभक्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

प्रेम को प्रभाव ऐसो, प्रेम तहाँ नेम कैसो ?
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है ।
प्रेमाभक्ति यह मैं कही, जाने विरला कोई ।
हृदय कलुषता क्यों रहे, जा घट ऐसी होई ॥

संत सुन्दरदास प्रभुप्रेम की चर्चा कर रहे हैं । सत्य तो यह है कि प्रभुप्रेम की महिमा का कोई वर्णन हो ही नहीं सकता है । मेरे पास एक डी. एस. पी. साधक आया और कहने लगा : ''बापू ! शिविर में मैं वर्दी पहनकर सेवा करूँगा ।''

मैंने कहा : ''तुम्हें शिविर में सेवा लेने और देने की यहाँ जरूरत ही नहीं पड़ेगी और न ही यहाँ वर्दी की जरूरत पड़ेगी । पुलिस वर्दी की भी नहीं और वालिन्टियर वर्दी की भी नहीं ।''

यहाँ तो बस प्रेम ही परोसने का काम कर लेता है और प्रेम ही खाने का काम कर लेता है । प्रेम ही प्रेम है, इस कारण सब अपनी-अपनी जगह सुव्यवस्थित चल रहा है । आपके घर एक छोटी-सी बारात आवे तो आप क्या कथा सुन सकते हैं ? आश्रम में शिविरों का आयोजन, मानो महंत के घर बारात है और महंत कथा सुन रहे हैं तो यह क्या है ? यह प्रभुप्रेम की ही तो महिमा है, भगवान की कृपाप्रसादी ही तो है, कबीर और नानक जैसे संतों की कृपाप्रसादी ही तो है । यह कोई समाजसुधार का ठेका लेनेवाले धर्म के ठेकेदारों की अथवा अखबारवालों की महिमा है क्या ?

> *एक डी. एस. पी. साधक आया और कहने लगा : ''बापू ! शिविर में मैं वर्दी पहनकर सेवा करूँगा ।'' मैंने कहा : ''तुम्हें शिविर में सेवा लेने और देने की यहाँ जरूरत ही नहीं पड़ेगी और न ही यहाँ वर्दी की जरूरत पड़ेगी । पुलिस वर्दी की भी नहीं और वालिन्टियर वर्दी की भी नहीं ।'' यहाँ प्रेम ही प्रेम है, इस कारण सब अपनी-अपनी जगह सुव्यवस्थित चल रहा है ।*

अच्छे-अच्छे अखबारवाले भी दुष्टवृत्ति से शायद ही बच पाते होंगे । कुछ अच्छे लेखक भी होते हैं और कई हल्के लोग भी होते हैं । जिनके हाथ में सत्ता है, उनमें भी कई हल्के लोग होते हैं । जो सज्जन हैं, सात्त्विक हैं, उनको धन्यवाद है । हम तो यही प्रार्थना करें कि भगवान सबको सद्बुद्धि दे । सबमें भगवान है, तो देर-सबेर सब उस भगवान को पाने के रास्ते चल पड़ें, उस सत्य को पाने के रास्ते चल पड़ें तो ठीक है, अन्यथा प्रकृति उन्हें ठीक कर देगी । घुमा-फिराकर अन्ततः उन्हें भी इसी रास्ते लगाएगी ।

आप लोग तो साधक हैं, समझदार हैं । अपने जीवन में आप लोगों को प्राणबल बढ़ाना चाहिये । आप एक ऐसी दिव्यता की ओर जा रहे हैं, जिसकी राह पर चलते-चलते अनेक विपदाएँ आ सकती हैं । मीरा के जीवन में विपदाएँ आई थीं और नरसिंह मेहता के जीवन में भी मुसीबतें आई थीं लेकिन :

बाधाएँ कब बाँध सकी हैं,
आगे बढ़ने वालों को ।
विपदाएँ कब रोक सकी हैं,
पथ पर चलने वालों को ॥

आपने देखा होगा कि पर्वत का शिखर जितना ऊँचा, गगनचुम्बी होता है, उतना ही वह बादलों से घिरा रहता है, अंधकार से घिरा रहता है । ऐसे ही आपका जीवन भीतर से जितना ऊँचा उठेगा, उतना ही बाहर-भीतर के विजातीय तत्त्वों से

घिरता जाएगा, विक्षेपों से घिरता जाएगा। फूल जितना अच्छा खिलेगा, उतने ही भंवरे और मधुमक्खियाँ उस पर मंडराएँगे, आँधी और तूफान का भी भय रहेगा लेकिन मरा हुआ जीवन जीने से तो संघर्षमय जीवन लाख गुना अच्छा है।

आवे भी तूफाँ राही तो पीछे न रखना कदम।
होती है जीत सदा जीवन में संघर्ष की॥

आसाराम तुमसे बार-बार कहता है कि तुम अपने जीवन में प्राणबल बढ़ाओ, भावबल जगाओ और क्रियाशक्ति का विकास करो। सब कुछ करो लेकिन भीतर से समझो कि सब प्रकृति में हो रहा है। अन्यथा कहने मात्र को धार्मिक बनोगे, पवित्र बनोगे और दूसरों को अपवित्र तथा अधार्मिक मानोगे। दूसरों को अपवित्र देखना ही महा अपवित्रता है क्योंकि दूसरा तो कोई है ही नहीं। भगवान कहते हैं : ''सबमें मैं ही हूँ।''

अच्छे-अच्छे अखबारवाले भी दुष्टवृत्ति से शायद ही बच पाते होंगे। कुछ अच्छे लेखक भी होते हैं और कई हल्के लोग भी होते हैं। जिनके हाथ में सत्ता है, उनमें भी कई हल्के लोग होते हैं। जो सज्जन हैं, सात्त्विक हैं, उनको धन्यवाद है।

एकोऽहं बहुस्याम्।

जीवन को विकसित करने के लिये, जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये प्राणबल, भावबल, क्रियाबल बढ़ाओ। परन्तु यह सब आप तब कर सकोगे जब योग की कोई कुंजी हाथ लग जाए, कुछ युक्तियाँ समझ में आ जायें और... योग की युक्तियाँ, योग की कुंजियाँ समझ में आएँगी सत्संग से। इसीलिये कबीरदासजी ने यह कहा होगा :

सत्संग की आधी घड़ी,
सुमिरन बरस पचास।
बरखा बरसे एक घड़ी,
अरहट फिरे बारों मास॥

सत्संग में कुछ ऐसी बातें आ जाएँगी जिनसे आपकी समझ बढ़ेगी, आपका हृदय विकसित होगा, ऐसा प्रेम छलकने लगेगा कि तितिक्षापूर्वक सत्संग में बैठे रहेंगे। भूख नहीं, प्यास भी नहीं, चिन्ता भी नहीं, शोक भी नहीं।

तुम पचास वर्षों तक माला घुमाते रहो फिर भी समझ ज्यों की त्यों बनी रहे, यह सम्भव है। लेकिन सत्संग में कुछ ऐसी बातें आ जाएँगी, जिनसे आपकी समझ बढ़ेगी, आपका हृदय विकसित होगा, ऐसा प्रेम छलकने लगेगा कि तितिक्षापूर्वक सत्संग में बैठे रहेंगे। भूख भी नहीं, प्यास भी नहीं, चिन्ता भी नहीं, शोक भी नहीं। शरीर को तो सब लगेगा लेकिन मन को इतना आनंद आएगा कि बाकी की सब बातें गौण हो जाएँगी। यह सब सत्संग का प्रभाव है। जीवन में सत्संग जरूरी है। सत्संग नहीं होगा तो कुसंग जरूर होगा। खूब गहराई से समझ लेना कि शुभ विचार नहीं करोगे तो अशुभ विचार आ ही जाएँगे। शुभ कर्म नहीं करोगे तो अशुभ कर्म हो ही जाएँगे।

कच्चे कान के एक आदमी को निंदकों की बातें एवं अफवाहें सुन-सुनकर किसी साधु पर गुस्सा आया तो उसने अपने साथ चाकू रख लिया। मौका मिलते ही वह साधु पर चाकू चलाने को तत्पर हुआ तब साधु ने प्रेम बरसाते एवं करुणामय दृष्टि डालते हुए कहा : ''देख! मैं तुझे अच्छा नहीं लगता हूँ तो तू मुझे चाकू घोंपना चाहता है, मारना चाहता है लेकिन मैं मरूँगा तब, जब मेरा अन्न-जल पूरा होगा। इससे पहले भी तेरे जैसे कितने ही आये लेकिन मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सके। बेटा! मैं तुझे अच्छा नहीं लगता हूँ इसलिये तू मुझे मारना चाहता है। इसके बदले तो तू यह प्रार्थना कर कि 'स्वामीजी की जो बात अच्छी नहीं लगती, वह मुझे न दिखे। मुझे जो अच्छा नहीं लगता है, वह स्वामीजी

(शेष पृष्ठ २८ पर)

कर्म का विधान

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :

कर्म प्रधान बिस्व किर राखा ।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड : २१८.२)

शुभ कर्म करें चाहे अशुभ कर्म करें, कर्म का फल सबको अवश्य भोगना पड़ता है ।

महाभारत के युद्ध के बाद की एक घटना है । भीष्म पितामह शरशय्या पर लेटे हुए थे । युधिष्ठिर को चिन्तित एवं शोकाकुल देखकर भगवान श्रीकृष्ण उन्हें लेकर पितामह भीष्म के पास गये और बोले :

''पितामह ! युद्ध के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर बड़े शोकग्रस्त हो गये हैं । अतः आप इन्हें धर्म का उपदेश देकर इनके शोक का निवारण करें ।''

तब भीष्म पितामह ने कहा :

''आप कहते हैं तो उपदेश दूँगा लेकिन हे केशव ! पहले आप मेरी शंका का समाधान करें । मैं जानता हूँ कि शुभाशुभ कर्मों के फल भुगतने पड़ते हैं किन्तु इस जन्म में तो मैंने कोई ऐसा कर्म नहीं किया और ध्यान करके देखा तो पिछले ७२ जन्मों में भी कोई ऐसा क्रूर कर्म नहीं किया, जिसके फलस्वरूप मुझे बाणों की शय्या पर शयन करना पड़े ।''

तब श्रीकृष्ण ने कहा : ''पितामह ! आपने पिछले ७२ जन्मों तक तो देखा किन्तु यदि एक जन्म और देख लेते तो आप जान लेते । ७३ वें जन्म में आक के पत्ते पर बैठे हुए हरे रंग के टिड्डे को पकड़कर आपने उसको बबूल के काँटे भोंके थे । कर्म के विधान के अनुसार वे ही काँटे आज आपको बाण के रूप में मिले हैं ।''

देर-सबेर कर्म का फल कर्त्ता को भुगतना ही पड़ता है । अतः कर्त्ता को कर्म करने में सावधान और फल भोगने में प्रसन्न रहना चाहिए । ईश्वरार्पित बुद्धि से किया गया कर्म अंतःकरण को शुद्ध करता है । आत्मानुभव से कर्त्ता का कर्त्तापन ब्रह्म में लय हो जाता है और अपने आपको अकर्त्ता-अभोक्ता माननेवाला कर्मबंधन से छूट जाता है । उसे ही मुक्तात्मा कहते हैं । अतः कर्त्ता को ईश्वरार्पित बुद्धि से कर्म करते हुए कर्त्तापन मिटाते जाना चाहिए, कर्मों से कर्मों को काटते जाना चाहिए ।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि :

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥

'जनकादि ज्ञानीजन भी (आसक्ति रहित) कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं । इसलिए (तथा) लोकसंग्रह को देखता हुआ भी तू कर्म करने को ही योग्य है अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है ।' (गीता : ३.२०)

''पितामह ! आपने ७३ वें जन्म में आक के पत्ते पर बैठे हुए हरे रंग के टिड्डे को पकड़कर उसको बबूल के काँटे भोंके थे । कर्म के विधान के अनुसार वे ही काँटे आज आपको बाण के रूप में मिले हैं ।''

कर्म करने के पहले उत्साह होता है, कर्म करते वक्त पुरुषार्थ होता है और कर्म के अंत में उसका फल मिलता है । स्थूल दृष्टि से तो कभी कालांतर में फल मिल सकता है लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो कर्म करने के पश्चात् तुरंत ही उसका फल हृदय में फलित होता है ।

धन पाकर, पद-प्रतिष्ठा पाकर यदि आप अपने स्वार्थ की बातें सोचते हो एवं शोषण, छल-कपट एवं धोखा-धड़ी करके सुखी होना चाहते हो तो कभी सुखी

नहीं हो सकोगे क्योंकि गलत कर्म करने से आपकी अंतरात्मा ही आपको फटकारेगी और हृदय में अशांति बनी रहेगी । लेकिन आप धन-पद-प्रतिष्ठा का उपयोग दूसरों की भलाई के लिए करते हो एवं जो अधिकार मिला है उससे भगवद्जनों की सेवा करते हो तो हृदय में शांति फलित होगी । इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है :

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोनि पूरुषः ॥

'इससे तू अनासक्त हुआ निरन्तर कर्त्तव्य कर्म का अच्छी प्रकार आचरण कर क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है ।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : ३.१९)

कर्म के सिद्धान्त को समझकर जो उचित ढंग से कर्म करता है, वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है । परंतु जो ठीक से कर्म करना नहीं जानता वह जन्म-मरण के चक्कर में पीसा जाता है ।

जो आदमी ठीक से गाड़ी चलाना नहीं जानता है उसके भरोसे कोई यात्रा करना चाहे तो उसकी यात्रा कैसे सफल होगी ? जो न स्टेरिंग पर काबू रख पाता है, न ब्रेक और क्लच का ठीक उपयोग कर सकता है, न एक्सीलरेटर पर कंट्रोल रख पाता है वह तुम्हें मंजिल तक कैसे पहुँचा पायेगा ? वह कहीं-न-कहीं टकरा जायेगा या खड्डे में जा गिरेगा । ऐसे ही तुम्हारे मनरूपी ड्राइवर को कर्मरूपी साधन का ठीक से उपयोग करना आ जाये तो तुम्हारे जीवन की शाम होने से पहले वह तुम्हें जीवनदाता तक पहुँचा देगा, नहीं तो कहीं-न-कहीं टकराकर जन्म-मरण के गड्ढे में गिरा देगा । फिर चार पैरवाली माँ के गर्भरूपी गड्ढे में गिरा दे चाहे छः पैरवाली माँ के गर्भरूपी गड्ढे में, किसी दास-दासी के घर ले जाये या सेठ-सेठानी के घर ले जाये, कोई पता नहीं । फिर चाहे सेठ के घर जन्म लो चाहे नौकर के घर, चाहे पशु के गर्भ में आओ चाहे पक्षी के, जन्म तो जन्म ही होता है ।

जन्मदुःखं जरादुःखं जायदुःखं पुनः पुनः ।
अंतकाले महादुःखं तस्माद् जाग्रहि जाग्रहि ॥

बार-बार जन्म लेना और मरना महा दुःखरूप है । मनुष्य जन्म ही एक ऐसा अवसर है जिसमें इस महादुःख से छूटने का सौभाग्य मिलता है । तुम अपनी समझ का सदुपयोग करो, अपने सत् अनुभवों का आदर करो एवं सत्पुरुषों से, सत्शास्त्रों से मार्गदर्शन पाकर अपना जीवन सफल बना लो ।

जो भी कर्म करो उत्साहपूर्वक करो, कुशलतापूर्वक करो । **योगः कर्मसु कौशलम् ।** कोई कांम छोटा नहीं है और कोई काम बड़ा नहीं है । परिणाम की चिंता किये बिना उत्साह, धैर्य और कुशलतापूर्वक कर्म करनेवाला सफलता को प्राप्त कर लेता है । अगर वह निष्फल भी हो जाए तो हताश-निराश नहीं होता है । वरन् पुनः कर्म में लग जाता है और कर्म पूरा होने तक उसीमें लगा रहता है ।

शोषण, छल-कपट एवं धोखा-धड़ी करके सुखी होना चाहते हो तो कभी सुखी नहीं हो सकोगे क्योंकि गलत कर्म करने से आपकी अंतरात्मा ही आपको फटकारेगी और हृदय में अशांति बनी रहेगी ।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से भी यही बात कही है :

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

'हे धनंजय ! आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर । यह समत्वभाव ही योग कहा जाता है ।'

(गीता : २.४८)

एक बार रामकृष्ण परमहंस का एक शिष्य बाजार से जो सब्जी खरीदकर लाया उसमें दो पैसे ज्यादा दे आया । रामकृष्ण परमहंस जब समाधि में से उठे तब उन्होंने शिष्य से पूछा :

''बैंगन क्या भाव लाया ?''

''ठाकुर ! दो आने सेर लाया ।''

''मूर्ख ! डेढ़ आने सेर की चीज के इतने ज्यादा

पैसे दे आया ? जब तू इतनी-सी सब्जी खरीदना नहीं जानता है तो परमात्मा को कैसे जान सकेगा ?''

महत्त्व पैसों का नहीं है लेकिन फिर कभी किसी काम में गलती न करे इसीलिए करुणा करके श्रीरामकृष्ण परमहंस ने शिष्य को डाँटा ।

बुहारी करते-करते किसीसे कहीं कोई कचरा रह जाता तो उसे भी ऐसे ही डाँटते कि : ''ठीक से बुहारी करके आँगन साफ नहीं कर सकता है तो अपना हृदय कैसे शुद्ध करेगा ? कैसे पवित्र करेगा ?''

कुशलतापूर्वक कर्म करना भी योग है । जिस समय जो कर्म करो वह पूरी समझदारी व तत्परता से करो । सिपाही हो तो सिपाही की ड्यूटी पूरी तत्परता एवं पूरी सच्चाई से निभाओ और साहब हो तो उस पद का सदुपयोग करके सबका हित हो ऐसे कर्म करो । श्रोता बनो तो ऐसे श्रोता बनो कि सुनी हुई सब बातें तुम्हारी बन जायें और वक्ता बनो तो ऐसे बनो कि परमात्मा से जुड़कर निकलनेवाली वाणी से अपना और दूसरों का कल्याण हो जाये । पुजारी बनो तो ऐसी पूजा करो कि पूजा करते-करते अपने-आपको भूल जाओ और पूजा ही बाकी रह जाये ।

आजकल कई लोग पुजारी का, साधु का या भक्त का लिबास तो पहन लेते हैं और मानते हैं कि हम पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं । ऐसा करके वे अपने स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्मों से भागना चाहते हैं एवं पलायनवादी हो जाते हैं । जबकि सच्चा भक्त आलसी और प्रमादी नहीं होता है, बुद्धू या पलायनवादी नहीं होता है । वह तो कर्म को भी पूजा मानकर ऐसे भाव से कर्म करता है कि उसका कर्म करना भी भक्ति हो जाता है । जो भक्ति के बहाने काम से जी चुराता है वह तो मूढ़ है । ऐसे लोगों के लिए ही श्रीकृष्ण ने कहा है :

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

'जो मूढ़बुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियों को हठ से रोककर इन्द्रियों के भोगों का मन से चिन्तन करता रहता है वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है ।'

(गीता : ३.६)

मनुष्य जन्म ही एक ऐसा अवसर है जिसमें इस महादुःख से छूटने का सौभाग्य मिलता है । तुम अपनी समझ का सदुपयोग करो, अपने सत् अनुभवों का आदर करो एवं सत्पुरुषों से, सत्शास्त्रों से मार्गदर्शन पाकर अपना जीवन सफल बना लो ।

ऐसे मिथ्याचारी का जीवन खुद के लिए और समाज के लिए बोझ बन जाता है । हमारे देश के लोगों ने जबसे गीता का यह दिव्य ज्ञान भुला दिया है तभी से कर्म में लापरवाही, पलायनवादिता, आलस्य, प्रमाद आदि खामियाँ आ गयीं जो इस देश के पतन का कारण बनीं । परदेश के लोगों के पास भले ही भगवद्गीता का ज्ञान नहीं है किन्तु उन लोगों में एक सद्गुण यह है कि जिस समय जो काम करेंगे, उसमें पूरी तत्परता एवं दिलचस्पी से लग जायेंगे । पाश्चात्य संस्कृति से हमारी संस्कृति महान् है, दिव्य है किन्तु उसकी महानता और दिव्यता के गुणगान करते हुए बैठे रहने से काम नहीं चलेगा । टालमटोली करके काम बिगाड़ने की आदत को शीघ्र ही सुधारना होगा । भगवद्गीता के दिव्य ज्ञान को फिर से आचरण में लाना होगा । भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

'हे अर्जुन ! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है वह श्रेष्ठ है ।' (गीता : ३.७)

वे घड़ियाँ धन्य हैं जिन घड़ियों में परमात्मा की प्रीति, परमात्मा का चिन्तन और परमात्मा का ध्यान होता है ।

सुरभित भारतीय संस्कृति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

विश्व की चार प्राचीन संस्कृतियों में केवल भारतीय संस्कृति की गरिमा ही अभी-भी मानव को इहलोक एवं परलोक का प्रसाद देने में समर्थ है । यद्यपि चीन, मिस्र, ग्रीक आदि की संस्कृतियाँ भी प्राचीन हैं तथापि अब ये खंडहरों, गिरजाघरों अथवा अजायबघरों में देखने को मिलती हैं । भारत के महापुरुषों को हम शत-कोटि प्रणाम करते हैं कि वे अभी-भी गाँव-गाँव और देश-देश में भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर उसे जीवित रखे हुए हैं ।

किसी भी तीर्थ में, धर्मशाला में चले जाओ अथवा किसी हिन्दू के घर जाओ, वहाँ अवश्य ही भारतीय संस्कृति के दर्शन होंगे । घर में, रसोईघर में भगवान का, अन्नपूर्णा अथवा सद्गुरु का चित्र होगा । आज भी लोग स्नान करके, पवित्र होकर भगवान के सम्मुख दीपक, अगरबत्ती जलाकर फिर भोजन बनाते हैं ।

वैष्णव महिलाएँ 'मैं ठाकुरजी के लिये प्रसाद बना रही हूँ...' इस भाव से रसोई बनाएँगी । खाने से पहले भी स्वास्थ्य की रक्षा तथा वातावरण के अशुद्ध तरंग असर न करे, इस भाव से तीन आचमन करते हैं अथवा कुल्ला करते हैं । यह न भी करेंगे तो कम-से-कम अन्नदेवता के सम्मुख हाथ जोड़कर ही भोजन करेंगे ।

जो लोग सनातन धर्म को नहीं मानते, उनके घर जाओ तो देखोगे कि रसोईघर के पास ही जूते पड़े हैं, उनकी बदबू चारों ओर फैल रही है । घर के आसपास तथा भीतर भी मुर्गियाँ टें-टें करती रहती हैं, उनके पंख इधर-उधर उड़ते रहते हैं तथा कचरे का ढेर लगा होता है । घर के सब लोग एक ही थाली में साथ में खाते हैं । एक-दूसरे का थूक मिलता है, जिससे बैक्टेरिया यानी अलग-अलग कीटांणु एक-दूसरे पर हमला करके नीचे के केन्द्रों में उद्वेग पैदा करते हैं ।

यूरोपियन कल्चर में देखो तो पुरुष पैन्ट, शर्ट, टॉई, बूट पहनता है । भोजन करते समय न हाथ धोना, न पैर धोना । चम्मच व काँटे के सहारे वे भोजन करते हैं । किसने किस भाव से भोजन तैयार किया है, यह उनके लिये महत्त्व नहीं रखता । उन्हें तो बस स्वाद का ही चस्का लगा रहता है । मन को उत्तेजित और चित्त को दूषित करनेवाले पॉपगीतों को वे बजाते रहते हैं । फलत: न जीवन में शांति है, न परिणाम का विचार । केवल स्वाद और वर्तमान क्षणिक सुख का आकर्षण । यह यूरोपियन कल्चर है ।

> *भारतीय संस्कृति न केवल खाना, पीना, रहना, जीना व मरना सिखलाती है अपितु मुक्त होना भी सिखलाती है ।*

'हमारे मन पर किसी भी चीज का क्या असर होगा ? किस भोजन का हमारे तन, मन एवं बुद्धि पर कैसा प्रभाव पड़ेगा ?' ये सब विचार भारतीय संस्कृति के पास ही हैं । मनुष्य का जब प्राणान्त होता है तब उसके मुख में गंगा, यमुना, गोदावरी आदि पवित्र नदियों का जल मिले तो ठीक, अन्यथा साधारण जल में ही तीर्थजल की भावना करके उसके साथ तुलसी पत्र रखा जाता है । जिस माला से उसने जप किये थे उसे अथवा तो कंठी आदि उसके गले में डाली जाती है ताकि उसकी उच्च गति हो अथवा वह मुक्त हो जाय- यह भारतीय संस्कृति सिखाती है ।

मरने के बाद मृतात्मा के उद्धार के लिये गरुड़पुराण का पाठ रखेंगे, गुरुग्रंथसाहिब अथवा श्रीमद्भागवत का पाठ कराएँगे या फिर किसी महापुरुष के चरणों में जाकर मृतात्मा की सद्गति के लिये प्रार्थना करना, श्राद्धकर्म करना, यह सब भारतीय संस्कृति सिखाती है ।

भारतीय संस्कृति न केवल खाना, पीना, रहना, जीना व मरना सिखलाती है अपितु मुक्त होना भी सिखलाती है । इतनी महान संस्कृति से सम्पन्न भारतभूमि में जन्म लेने के बाद भी यदि भारतवासी भीतर से हीन भाव से आक्रान्त रहता है तो उसका प्रमुख कारण है पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण ।

डॉ. शिवानन्द, जो कि बाद में शिवानंद सरस्वती

के नाम से एक प्रख्यात संत हो गये, के पास एक जेन्टलमेन साहब आया । वह था तो भारतीय, लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से पीड़ित था । उसने डॉ. शिवानन्द से कहा : ''मैंने बहुत-सी दवाइयाँ लीं, लेकिन मेरा सिरदर्द नहीं मिट रहा है ।''

शिवानंद बोले : ''बेवकूफ साहब ! तुमने पश्चिम का अंधानुकरण किया है । पश्चिमी देशों में ठंड अधिक है, इसलिये कहीं सर्दी न हो जाय, इस डर से वहाँ के लोग गले में टाई पहनते हैं । उसी टाई ने धीरे-धीरे आडम्बर का रूप ले लिया । भारतीय वातावरण के अनुसार टाई गले में फाँसी जैसी लगती है । भारत के गरम वातावरण में टाई पहनने से गले की नसों पर दबाव पड़ता है, जिससे रक्त के परिभ्रमण में परेशानी होती है फलतः हानि होती है । जब तक तुम इस मुख्य कारण को दूर नहीं करोगे तब तक चाहे कितने भी उपचार कराओ, सिरदर्द दूर नहीं होगा ।''

उस आदमी ने तुरन्त ही टाई को निकालकर फेंक दिया और स्वास्थ्यप्रद जीवन की ओर अग्रसर हो गया । आप जब श्वासोश्वास करते हैं तब आपका रक्त शुद्ध होता है तथा आपके रोमकूपों में भी आबहवा का असर पड़ता है । यदि आप कसे हुए तंग कपड़े पहनते हैं तो आपके रोमकूप कार्य नहीं कर पाते फलतः आपकी किडनी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

भारत के ऋषि-मुनियों ने इतनी सूक्ष्मतम खोजें करके दी हैं लेकिन हम पाश्चात्य संस्कृति के पीछे पागलों की भाँति दौड़ रहे हैं । भारत के साधु-संतों के पास व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन जीने का अनमोल खजाना है लेकिन उन अनमोल रत्नों को छोड़कर भारत का लाल आज संस्कृतिविहीन देशों का अनुकरण करने लगा है ।

भारत के साधु-संतों के पास व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन जीने का अनमोल खजाना है लेकिन उन अनमोल रत्नों को छोड़कर भारत का लाल आज संस्कृतिविहीन देशों का अनुकरण करने लगा है ।

भारतीय संस्कृति न केवल खाना, पीना, रहना, जीना व मरना सिखलाती है अपितु मुक्त होना भी सिखलाती है । इतनी महान संस्कृति से सम्पन्न भारतभूमि में जन्म लेने के बाद भी यदि भारतवासी भीतर से हीन भाव से आक्रान्त रहता है तो उसका प्रमुख कारण है पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण ।

स्पॉर्ट बीप के युद्ध में तीन हजार सशस्त्र सैनिकों को मात्र तीन सौ भारतीय सैनिकों ने मार गिराया था । इस विजय का कारण यह था कि स्पॉर्ट बीप पहले बहुत ही विलासिता में, विकारों में जीवन बरबाद कर चुका था तथा भारत के सैनिक संयम व सदाचार से जीवन व्यतीत करते थे ।

भारतीय संस्कृति के अनुसार यहाँ विवाह भी शास्त्रविधि से सम्पन्न होता है । विवाह के समय ब्राह्मण कहता है कि वरराजा साक्षात् नारायण का अंश है और कन्या साक्षात् लक्ष्मी है । तुम्हारे भीतर जो देवत्व है, उसे जगाने की विधि का नाम ही विवाह है । ऐसा नहीं कि एक-दूसरे की कमर तोड़ दी, बस हो गई शादी । लव-मेरेज के अंधानुकरण ने तो बरबादी ही कर दी है ।

भारत के संतों ने जो प्रसाद दिया है, यदि भारतवासी उसका अनुकरण करते तो यह हाल न होता । भारतीय शास्त्र बताते हैं कि एकादशी, अमावस्या, श्राद्ध पक्ष, पूर्णिमा, पर्व के दिनों में तथा अपने जन्म दिवस के अवसर पर पति-पत्नी का भोग नहीं करना चाहिये ।

भारत के साधु-संतों ने इतने आविष्कार किये हैं कि यदि उन्हें न भूलाकर उनकी बतलायी राह पर चलें तो यह देश एक बार पुनः विश्व का गुरु बन जाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

सम्राट अकबर की कृष्णभक्त बीबी : ताज

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सोलहवीं शताब्दी में हिन्दुस्तान पर मुगलों का साम्राज्य था। अकबर ने आगरा को ही राजधानी बनाकर सत्ता संचालित की थी। उसके दरबार में अब्बास खाँ नामक एक मुगल जागीरदार रहता था जो रियासत का पाँचहजारी मनसबदार था। अब्बास खाँ ने बाबर, हुमायूँ और अकबर के लिये उन्हीं के साथ अनेक शत्रुओं से लड़ाइयाँ लड़ी थीं। बैरम खाँ जैसे सिपहसालार गद्दारी दिखा चुके थे लेकिन अब्बास खाँ वृद्ध होने तक अपने कर्त्तव्य पर डटा था। खुद अकबर को भी उसने एक बार लड़ाई में दुश्मन के घेरे से निकाला था, परिणामत: वह भी उसे अत्यधिक आदर देता था।

अब्बास खाँ आगरा के महल में ही अपनी इकलौती पुत्री हमीदा के साथ रहता था। हमीदा की माँ बचपन में ही चल बसी थी। अत: उसे पिता का लाड़-प्यार खूब मिला था। हमीदा बहुत ही सुन्दर एवं कोकिलकंठा युवती थी। वह जब कोई राग छेड़ती तो सुननेवाले ऐसे मुग्ध हो जाते थे मानो बीन से मृग।

हमीदा की माँ बचपन में ही चल बसी थी। अत: उसे पिता का लाड़-प्यार खूब मिला था। हमीदा बहुत ही सुन्दर एवं कोकिलकंठा युवती थी। वह जब कोई राग छेड़ती तो सुननेवाले ऐसे मुग्ध हो जाते थे मानो बीन से मृग।

एक दिन जब अकबर अपने दरबार में बैठा था तब उसे सूचना मिली कि चाँदबीबी के किले की रक्षार्थ सैन्य-सहायता की आवश्यकता है। अकबर के न चाहने पर भी वहाँ की सुरक्षा का दायित्व अब्बास खाँ ने अपने ऊपर लिया और युद्ध के लिए चल पड़ा। चाँदबीबी का किला जीत तो लिया गया लेकिन अब्बास खाँ की शहादत की कीमत पर। अकबर को इस सूचना से काफी सदमा पहुँचा।

इधर अब्बास खाँ के युद्ध में जाते ही हमीदा की खैर-खबर रखना अकबर ने अपना कर्त्तव्य समझा और वह अब्बास खाँ के महल में जाने लगा। धीरे-धीरे अकबर-हमीदा की मुलाकात प्रेम में बदल गई। दोनों रात्रि में नौकाविहार करते और हमीदा के गीतों को सुनकर अकबर बेसुध हो जाता। अकबर ने उसे नया नाम 'ताज' देकर अपने दिल की ताज बनाना चाहा।

पिता के मृत्यु की सूचना पाकर ताज बिलबिला उठी। अकबर ने उसे तसल्ली दी और उससे निकाह कर अपने हरम में ले आया। उस जमाने के राजा तो अनेक शादियाँ कर लेते थे। हिन्दूरानी जोधाबाई व अन्य रानियों को ताज खटकने लगी क्योंकि ताज पर अकबर अत्यधिक आसक्त था। वे सभी ताज के खिलाफ अकबर को भड़काती रहती थीं लेकिन ताज के प्रति अकबर का विशेष लगाव था इसलिये वह सुनी-अनसुनी कर देता था। फिर भी यदि कई लोग बार-बार फरियाद करें तो मनुष्य के दिल पर असर तो पड़ता ही है। अकबर का लगाव धीरे-धीरे ताज के प्रति कम होता गया।

प्रत्येक स्त्री चाहती है कि मेरे पति मेरे वश में रहें, कहीं भी जावे नहीं, मेरे सिवाय कहीं भी देखे

नहीं । स्त्रियों की एक भोली माँग यह भी होती है कि मेरा पति वीर हो, बहादुर हो, मर्द हो, और दूसरी माँग यह होती है कि पति मेरे कहने में चलें । पुरुषों की भी यह चाहत होती है कि मेरी पत्नी होशियार हो, बड़ी ही खूबसूरत हो और कोई भी उसकी तरफ न देखे । अब कोई उसकी तरफ ही न देखे, यह कैसे हो सकता है ? लोग तो देखेंगे ही । विरुद्ध इच्छा होती है तभी तो आदमी के मन में उथल-पुथल होती है ।

हरम में बीरबल की बेटी शोभावती तथा राय वृन्दावनदासजी की बेटी लीलावती का बहुत आना-जाना था । ताज से इनकी मित्रता हो गई । ये दोनों लड़कियाँ चरित्रवान, गुणवान तथा श्रद्धावान थीं । जब भी ये ताज से मिलतीं, मथुरा में रहनेवाले अपने गुरुदेव संत श्री विट्ठलनाथजी के चमत्कारों एवं श्रीकृष्ण तथा गोपियों की कथा ताज को सुनाया करती थीं । इन दोनों सहेलियों के संग का रंग ताज पर ऐसा लगा कि श्रीकृष्ण तथा संत श्री विट्ठलनाथजी के प्रति उसकी श्रद्धा व आस्था दृढ़ हो गई, अथाह हो गई, अगाध हो गई ।

अपने गुरु की महिमा बताने से शिष्य का हृदय तो पावन होता ही है, सामनेवाले के कान भी पवित्र हो जाते हैं तथा उसका जीवन भी सुधर जाता है । विलासिता की खाई में गिरी हुई ताज जब पति अकबर की उपेक्षापूर्ण दृष्टि तथा सौतों के उलाहनों से परेशान हो उठी तो उसे इन झंझटों से छुटकारा दिलवाने में संत श्री विट्ठलनाथजी के सामर्थ्य का स्मरण आया ।

नारी स्वभाव से ही अपने पति को अपना पूरा संसार समझती है और उस पर वह अपना एकाधिकार भी चाहती है । जब यह अधिकार नारी को नहीं मिलता, तब वह इधर-उधर से सहायता लेकर यह अधिकार पाना चाहती है ।

ताज ने अपनी दोनों सहेलियों, शोभावती व लीलावती से कहा कि : ''अपने गुरु महाराज से ऐसा कोई ताबीज बनवा लाओ जिससे मेरे पति मेरे वश में हो जायें ।''

दोनों सहेलियाँ मथुरा पहुँची तथा संत विट्ठलनाथजी के चरणों में प्रार्थना की : ''गुरुदेव ! हमारी सहेली ताज, अकबर की उपेक्षा एवं सौतों के उलाहनों से बहुत ही परेशान है । कृपा करके ऐसा कोई ताबीज आदि प्रदान कीजिये ताकि अकबर उसके वश में हो जायें ।'

गुरुदेव ने ताबीज बनाकर दे दिया और ताज ने उसे पहन लिया । स्त्री लाख कोशिश करे कि मेरी बात छुपी रहे लेकिन या तो दूसरी स्त्री उसकी बात खोलेगी अथवा तो वह स्वयं ही अपने मुख से उस बात का बयान कर देगी या फिर कोई ऐसी हरकत करेगी जिससे औरों का ध्यान उसके द्वारा धारण की गई वस्तु पर पड़े ।

ताज भी बार-बार ताबीज की ओर निहारती तथा उसे बाहर ही लटकाये रखती ताकि उसकी सौतों की उस पर दृष्टि पड़े । अकबर की अन्य रानियों ने जब ताज के गले में पड़ा ताबीज देखा तो उनमें जबरदस्त हलचल हुई कि 'यह रांड क्या बनवा लाई है ?' उन्होंने अकबर के कान भरे कि 'इसने आपके लिये कुछ किया है । यह रांड आपको खा जाएगी । इसने टूणे-टोटके करवाये हैं... यह डाकिनी है... फलानी है... अमुक है ।' अकबर ने फिर भी ध्यान नहीं दिया लेकिन जब

अब्बास खाँ के युद्ध में जाते ही हमीदा की खैर-खबर रखना अकबर ने अपना कर्त्तव्य समझा और वह अब्बास खाँ के महल में जाने लगा । धीरे-धीरे अकबर-हमीदा की मुलाकात प्रेम में बदल गई ।

शोभावती तथा लीलावती चरित्रवान, गुणवान तथा श्रद्धावान थीं । जब भी ये ताज से मिलतीं, मथुरा में रहनेवाले अपने गुरुदेव संत श्री विट्ठलनाथजी के चमत्कारों एवं श्रीकृष्ण तथा गोपियों की कथा ताज को सुनाया करती थीं ।

बात बढ़ने लगी और हिन्दूरानी जोधाबाई ने भी ताज का विरोध किया तब अकबर ताज के कक्ष में पहुँचा और इधर-उधर की बातें करते हुए ताबीज पर दृष्टि जमाई और पूछा: ''अरे... यह क्या है तेरे गले में ?''

चूँकि भक्त सहेलियों के संसर्ग से ताज का मन भी स्वच्छ और निर्मल हो गया था, इसलिये उसने अपने पति से छल-कपट नहीं किया और साफ-साफ बता दिया : ''आप मेरे वश में हों, मुझ पर प्रसन्न रहें, इसलिये मैंने ताबीज मँगवाया है ।''

अपने गुरु की महिमा बताने से शिष्य का हृदय तो पावन होता ही है, सामनेवाले के कान भी पवित्र हो जाते हैं तथा उसका जीवन भी सुधर जाता है ।

अकबर : ''यह किससे मँगवाया है तूने ?''

ताज : ''अला बाँधूँ... बला बाँधूँ... डाकिनी बाँधूँ... शाकिनी बाँधूँ... वाले तांत्रिकों से नहीं मँगवाया है, भूत-प्रेतवालों से नहीं मँगवाया है । मैंने परम पूज्य संत श्री विठ्ठलनाथजी के श्रीचरणों में निवेदन करके मँगवाया है ।''

अकबर चिढ़ा : "हुम्म ! विठ्ठलनाथ ! हिन्दू संत !!"

"जी हाँ ।"

"लाओ... ताबीज हमको दे दो ।"

ताज ने इन्कार किया तो अकबर ने क्रोधित होकर बलपूर्वक उसके गले से ताबीज तोड़ लिया । ताज बेचारी असहाय स्त्री और वह ठहरा बादशाह... !

कामन-टामन-टोटका आदि के सब कूड़-कपट धो डालो, त्याग दो, इनसे पति को वश मत करो । पति के कहे अनुसार करने लग जाओ तो वह स्वतः वश में हो जाएगा ।

ताबीज खोलकर देखा तो उसमें से एक चिठ्ठीनुमा कागज निकला । ताबीज बनानेवाले ताबीज में टोने-फोने-मंत्र की चिठ्ठियाँ डालते हैं । अकबर ने जब वह चिठ्ठी पढ़ी तो वह दंग रह गया ! चिठ्ठी में लिखा था :

कामन टामन टोटका, ये सब डारो धोई ।
पिया कहै सो कीजिये, आपुहि ते बस होई ॥

पति जैसा कहे, वैसा करने लग जाओ तो वह स्वतः ही वश में हो जाएगा । कामन-टामन-टोटका आदि के सब कूड़-कपट धो डालो, त्याग दो, इनसे पति को वश मत करो । पति के कहे अनुसार करने लग जाओ तो वह स्वतः वश में हो जाएगा - इतना ही उस ताबीज में लिखा था ।

अकबर पर इस बात का बड़ा भारी असर हुआ कि हिन्दू संत कितने ईमानदार हैं ! हिन्दू संतों में कितनी विशाल समझ व बुद्धि है ! अन्यथा औरतों के कहने पर वे कुछ टूणा-फूणा कर देते तो मेरी मति मलिन हो जाती लेकिन उन हिन्दू संत ने, भारत के संत ने औरत को कैसा अद्‌भुत ज्ञान दिया ! धन्य हैं भारत के संत !

अकबर पर इस घटना का इतना असर हुआ कि वह ताज के साथ संत विठ्ठलनाथजी के दर्शन करने मथुरा पहुँचा और आदर सहित उनके श्रीचरणों में अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित किये । मुगल सल्तनत का एक सम्राट भी आज भारत के संत के चरणों में शीश झुकाकर नमन, दर्शन कर रहा है । कैसी अद्‌भुत है भारतीय संस्कृति और इसके ज्ञानी संत !

आज अकबर को यह अनुभव हो रहा था कि भारत का संत लोककल्याण के सागर में डुबकी लगाता है, मानवता के मोती ढूंढ़ता है और विश्व को प्रेम का प्रसाद बाँटता है ।

कितना सच कहा है कि :

संत आध्यात्मिक आकाश में इंसानियत का इन्द्रधनुष है... संत सौहार्द्र के सितार पर सद्‌भाव का संगीत है... संत प्यार की पीठिका पर संस्कार की साधना है... संत अपनत्व के आँगन में आत्मीयता की आराधना है । संत

स्वयं दुःख सहकर भी कल्याण करता है । संत शत्रुता के शूल नहीं चुभाता, कलह के काँटे नहीं उगाता, संत तो सद्भाव के सुमन खिलाता है । संत की वाणी में लोककल्याण होता है । वह लोककल्याण का वाहक होता है । संत मानवता व मुक्ति के गायक के साथ मनुष्य की पीड़ा दूर करनेवाला साधक भी है । संत का अर्थ होता है समत्व एवं क्षमत्व के किनारों के बीच बहनेवाली नैतिकता की नदी । पर्वत-सी ऊँचाई, आकाश-सी गंभीरता, नदी-सी उदारता, सूर्य-सी दानशीलता और जल-सी शीतलता संत के व्यक्तित्त्व में होती है ।

नर नहीं वह जन्तु है जिस नर को धर्म का भान नहीं ।
व्यर्थ है वह जीवन जिसमें आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं ॥
चाँदी के चन्द टुकड़ों पर अपनी जिन्दगी बेचनेवालों ।
मुर्दा है वह देश जहाँ पर संतों का सम्मान नहीं ॥

एक हजार बरस की लम्बी गुलामी के दौरान विदेशी आक्रान्ताओं के बर्बरतापूर्वक किये गये एक से बढ़कर एक भीषण आक्रमणों तथा अत्याचारों के बाद भी सभी प्राचीन उदात्तता, नैतिकता और आध्यात्मिकता का जन्मस्थान रहा यह भारत और उच्चादर्शों से युक्त इसकी पावन संस्कृति यदि नहीं मिटी है तो इसके पीछे किसका हाथ है ? यह इस देश में विचरण करने वाले इन्हीं देवतुल्य ऋषिगणों, सद्गुरुओं और महापुरुषों की करुणा-कृपा का फल है जिनके वेदान्ती ज्ञान ने अनेकानेक प्रतिकूलताओं के बाद भी समग्र राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोये रखा । यह देश इन ऋषियों के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता ।

आज तक तो गुरु महाराज के विषय में अपनी सखियों, शोभावती व लीलावती से केवल सुना ही था लेकिन आज गुरुजी के दर्शन होते ही ताज के हृदय में भी अजीब-सी गुदगुदी होने लगी । गुरु की नूरानी नजरों से जो शांति, प्रेम, कृपा, त्याग, तपस्या की किरणें बह रही थीं, उससे प्रेमल स्वभाव की, सरल स्वभाव की, सौतों से घिरी हुई, अशांति में रहनेवाली ताज को एक अनोखी शांति व अद्भुत सुख का एहसास हुआ । ताज की प्रार्थना पर अकबर ने उसे संत श्री विट्ठलनाथजी से दीक्षा लेने की आज्ञा भी दे दी ।

मुगल सल्तनत का एक सम्राट भी आज भारत के संत के चरणों में शीश झुकाकर नमन, दर्शन कर रहा है । कैसी अद्भुत है भारतीय संस्कृति और इसके ज्ञानी संत !

दीक्षा देते समय गुरु तो अपने गुरुतत्त्व में होते हैं । आत्मसुख को छूकर संत विट्ठलनाथजी ने ताज को मंत्रदीक्षा प्रदानकर श्रीकृष्णपूजा की थोड़ी-सी विधि भी बता दी । दीक्षा लेकर वह आगरा लौट आई । ताज पर संत विट्ठलनाथजी के उपदेशों एवं कृपावृष्टि का इतना असर पड़ा कि वह श्रीकृष्णप्रेम में लीन हो गई । जिस महल में वह रहती थी, ताज का वह भोगमहल अब श्रीकृष्णपूजा का योगमहल बन गया । वहाँ सदा कीर्तन आदि का आयोजन होता रहता था । सौतें उसे कुछ भी ताने मारें, उलाहनें देवें लेकिन अब ताज पर उनका तनिक भी असर नहीं होता क्योंकि अब उसे गुरुमंत्र मिला है, उसी में वह रमण कर रही है ।

आप बाहर ध्यान देते हैं तब ही बाहर का जगत आपको प्रभावित करता है । आप बाहर ध्यान नहीं देते और रात को सो जाते हैं तो दुनिया की निन्दा-स्तुति, मानापमान, गरीबी-अमीरी आपका क्या भला-बुरा कर सकती है ? पहले आप बेवकूफी से दुःख पर हस्ताक्षर करते हैं तभी दुःख आपको सताता है ।

ताज तो रम गई थी शास्त्र के इस वाक्य में :

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति पूजामूलं गुरोःपदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोःकृपा ॥

वह तो मुक्ति के मार्ग पर चल पड़ी । कभी श्रीकृष्ण की पूजा करे तो कभी गुरुदेव की । दोनों में उसकी अभेददृष्टि थी । गुरुदेव व श्रीकृष्ण की याद करते-करते ताज का हृदय गद्गद् होने लगा । कभी-कभार अकबर उसके महल में आ जाता था लेकिन वह पहले

जिस प्रकार उसे काम-विकार में सहयोग देती थी, संसार की आसक्तिपूर्ति में सहयोग देती थी उससे उसे वैराग्य आने लगा । अकबर के पास तो बहुत-सी रानियाँ थीं फिर भी ताज के प्रेमल स्वभाव से वह विशेष प्रभावित था इसलिये कभी-कभार उसके पास आ जाता था और संत विठ्ठलनाथजी तथा श्रीकृष्ण की बातें सुनकर संतुष्ट होकर चला जाता था ।

ताज का प्रेम इतना बढ़ गया कि परम प्रेमास्पद भगवान उसके वश में हो गये । वह एकाग्रचित्त होकर स्नेह से उन्हें बुलाती कि : ''आओ, मेरे साथ तुम चौसर खेलो ।'' और मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण स्वयं आकर उसके साथ चौसर खेलते । चौसर खेलते समय हा-हा...ही-ही...गपशप तो होता ही है । ताज श्रीकृष्ण को ताना मारती कि : ''कैसे हो भला तुम भी ? जब भी बुलाती हूँ तो बड़ी मुश्किल से आते हो और आते हो तो हमेशा ही हारकर जाते हो, कभी जीतते नहीं । औरत-जात से तुम हार जाते हो ! कैसे खिलाड़ी हो तुम ।''

''खबरदार, ताज ! तुझे जितनी छूट दी गई, उतना ही तू सिर पर चढ़ती गई और उतना ही तूने गलत रास्ता पकड़ा । सच बता, इस महल में जिस मर्द के साथ तू अभी बात कर रही थी वह कौन है ? कहाँ है वह ?''

तब वे ठाकुरजी कहते : "**अहं भक्तपराधीनः ।** जो मुझे स्नेह करता है, मेरा हो जाता है, मैं उसके आगे हार ही जाता हूँ और मेरी हार, हार नहीं है । मेरे भक्त की जीत मेरी ही जीत है । मुझे कभी चाह नहीं होती कि मैं अपने भक्तों से जीतूँ । मुझे तो अपनी हार में भी जीत लगती है । तू खुश है तो मैं भी खुश हूँ ।"

एकबार ताज के कक्ष के बाहर खड़ा अकबर इस वार्तालाप को सुनकर चौंक उठा । उसे ताज पर शक हुआ क्योंकि वह शंकालु प्रकृति का था । उसे लगा कि मेरी पत्नी के साथ कुछ गड़बड़ी हो रही है । वह तुरन्त ही भीतर आया और चिल्लाया : "खबरदार, ताज ! तुझे जितनी छूट दी गई, उतना ही तू सिर पर चढ़ती गई और उतना ही तूने गलत रास्ता पकड़ा । सच बता, इस महल में जिस मर्द के साथ तू अभी बात कर रही थी वह कौन है ? कहाँ है वह ? कहाँ चला गया है वह ?"

ताज बोली : "वह कहीं से भी आ सकता है सरताज ! और कभी कहीं जाता भी नहीं है । वह अभी भी यहीं मौजूद है ।"

"कहाँ है वह ? दिखता नहीं है ? उसे पेश कर ।"

"वह आपकी राजसत्ता की हुकूमत से पार का आदमी है । उस पर आपका शासन न चले, ऐसी हस्ती है वह ।"

"ऐसा कौन-सा अपना यार खोज लिया तूने ?"

"हाँ, मैंने अपना यार खोज लिया है और वह प्राणीमात्र का यार है, सबका यार है, सबका मित्र है ।"

"अच्छा ! सबका मित्र है तो कौन है वह ? क्या तेरा कन्हैया है ? तेरा गुरु है ?"

"जी हाँ, आलमपनाह ! वह मेरा कन्हैया है ।"

"मुझे तो दिखता नहीं है ।"

"वे तो मेरे सामने खड़े हैं ।"

"कहाँ हैं ?"

"ये खड़े हैं ।" ताज ने इशारा करके बताया ।

"मुझे नहीं दिखते ताज ! तू अपने मालिक से, अपने भगवान से कह कि वे यदि यहाँ हैं तो महल का बुझा हुआ चिराग जला दें ।"

ताज ने भगवान से प्रार्थना की और महल का बुझा चिराग जगमगा उठा ।

अकबर ताज से विनती करता है कि : "ताज ! उस सांवली सूरत का, मोहिनी मूरत का मुझे भी दीदार करवा दे ।"

ताज ने अपने प्यारे कन्हैया से अनुनय-विनय किया तभी आवाज आई कि : ''मिथ्या संसार में फँसे हुए, हाड़-माँस के शरीर को 'मैं' मानकर भोगों में उलझे हुए हे मानव ! तुम्हारी मति मन्द है, इसलिये

तुम मुझे नहीं देख सकते । मैं तो वास्तव में तुम्हारे सिर पर भी हूँ और तुम्हारे पैरों में भी हूँ । तुम्हारे दिल में भी हूँ और तुम्हारे दिमाग में भी हूँ । तुम्हारे नूर के द्वारा मैं ही देखता हूँ और तुम्हारे दिल को मैं ही धड़काता हूँ । मुझे पहचानने के लिये शुद्ध मति, शुद्ध हृदय चाहिये । मुझे चर्मचक्षुओं से देखोगे तो मेरा मायावी स्वरूप दिखेगा लेकिन किसी ज्ञानी गुरु की कृपा से देखोगे तो मेरी असलियत का तुम्हें अनुभव हो जाएगा । तुम इस मिथ्या संसार के नश्वर भोगों में व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो । रस तो ताज पी रही है और तुम्हारे भाग्य में तो छिलके और गुठलियाँ भी नहीं आ रही हैं, पागल !"

अकबर ने प्रायश्चित्त की वाणी में अनुनय-विनय किया : "हे मालिक ! केवल एक बार इस बन्दे पर रहमत हो जाए । मेरे कर्म तो ऐसे नहीं हैं कि आपका दीदार कर सकूँ ।

तेरी सूरत का ऐ रब मुझे दीदार हो जाए ।
कहाँ किस्मत ऐसी मेरी, नसीबा यह कहाँ मेरा ॥

मुझे ताज की बदौलत, उसकी भक्त सहेलियों की बदौलत, उनकी दुहाई से तुम मुझे केवल एक बार ही दीदार करवा दो । यह बन्दा आपके दीदार का भिखारी है, प्रभु !"

अकबर की इस प्रार्थना पर नन्दनन्दन कन्हैया ने अपने प्रकाशपुंज की थोड़ी-सी झाँकी दिखलाई और अन्तर्धान हो गये । उस माखनचोर ने अब तो अकबर का दिल भी चुरा लिया । ताज तो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी इसलिये उन्हें अपना दिल दे बैठी थी लेकिन अकबर तो प्रार्थना और प्रायश्चित्त करते-करते अपना दिल हार बैठा था । ताज दिल दे बैठी थी और अकबर दिल हार बैठा था ।

संत विठ्ठलनाथजी के उपदेशों एवं कृपावृष्टि का इतना असर पड़ा कि वह श्रीकृष्णप्रेम में लीन हो गई । जिस महल में वह रहती थी, ताज का वह भोगमहल अब श्रीकृष्णपूजा का योगमहल बन गया ।

अकबर ताज से कहता है : "ताज ! मुझे तुम पर शक हुआ था । मैंने तुम्हें पापी समझकर खुद एक पाप किया है । आओ, अब मथुरा चलकर तुम्हारे गुरुदेव संत श्री विठ्ठलनाथजी महाराज और ठाकुरजी के दर्शन कर इस पाप को धो डालूँ ।"

अकबर और ताज मथुरा चल दिये और उन्होंने संत विठ्ठलनाथजी और ठाकुरजी के दर्शन किये । ताज ने मथुरा में ठाकुरजी के मंदिर में ही एक सप्ताह का अखंड नाम संकीर्तन आरंभ कर दियां । अन्न-जल का परित्याग कर वह एक सप्ताह तक अपने प्यारे के अखंड नाम-संकीर्तन में मस्त-सी रही । ताज में कवित्वशक्ति का भी अद्‌भुत प्राकट्य हुआ था । अपने कोकिलकंठ से जब वह कोई तान छेड़ती तो सुनने वाले हर शख्स उसके भक्तिगीतों को सुनकर झूम उठते थे ।

ताज ने आज जो तान छेड़ी, उसके शब्द थे :

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी,
तुम हस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं ।
देवपूजा ठानी औ' निमाज हूँ भुलानी,
तजे कलमा-कुरानी वारे, गुणन गहूँगी मैं ॥
साँवला सलोना, सिर ताज गिर कुल्लाह दिये,
तेरे नेह दाग में निदाघ हो दहूँगी मैं ॥
नन्द के कुमार, कुरबान तानि सूरत पै,
हौं तो तुरकानि, हिन्दुवानी होई रहूँगी मैं ॥

एक सप्ताह का अखंड कीर्तन पूरा होते ही उसे भगवान श्री गोविन्द के दर्शन हुए । ताज भगवान का स्पर्श करने के लिये आगे बढ़ने लगी किन्तु एक सप्ताह के निर्जल उपवास से उसमें ताकत नहीं रही थी । उसका शरीर कमजोर हो चुका था । वह उठी और धीरे-धीरे ठाकुरजी के करीब पहुँचते-पहुँचते गिर पड़ी । अकबर ने चाहा कि वह उसे सहारा दे लेकिन वह उसे छूने का साहस नहीं कर सका । ताज ने पुनः होश संभाला और अपने को घसीटकर वह ठाकुरजी के चरणों तक पहुँच गई तथा वहीं अन्तिम साँस लेकर सदा-सदा के लिये ठाकुरजी

के धाम में प्रयाण कर गई ।

अकबर भरे कंठ से बोला : "जिसकी चीज थी उसने ले ली । हे अल्लाह ! वास्तव में तो सारी चीजें, सारा विश्व तेरा है लेकिन जो तुझे प्रेम करता है वह तुरन्त तेरा हो जाता है ।"

इस तरह निर्दोष प्रेम करनेवाली आत्मा को, निर्दोष प्रेम करनेवाले परमात्मा ने अपना लिया ।

ये मुहब्बत की बातें हैं ओधव !
बन्दगी अपने बश की नहीं है ॥
यहाँ सिर देकर होते हैं सौदे ।
आशिकी इतनी सस्ती नहीं है ॥
प्रेमवालों ने कब किससे पूछा ।
किसको पूजूँ ? बता मेरे ओधव !!
यहाँ दम-दम पे होते हैं सिजदे ।
सिर घुमाने की फुर्सत नहीं है ॥

जो अहंकार दे डालता है उसे आत्मसुख, आत्मानंद मिल जाता है । ताज का प्रारब्ध ऐसा ही, इतना ही रहा होगा कि इस रूप में ही उसके शरीर का विलय होगा अन्यथा तो केवल अहंकार मिटते ही परमात्मसुख, परमात्मज्ञान, परमात्मशांति प्रकट हो जाती है । कहाँ तो आगरा के पाँच हजारी मनसबदार अब्बास खाँ के मरणोपरांत अनाथ बनी ताज और कहाँ उसे बीरबल की बेटी शोभावती तथा राय वृन्दावनदास की बेटी लीलावती का सत्संग मिलने व सद्गुरुओं की कथा मिलने का सौभाग्य ? ताज का जीवन जीने का ढंग ही बदल गया ।

जात-पाँत पूछे ना कोई ।
हरि को भजे सो हरि का होई ॥

जो भगवान को भजता है, वह भगवान का हो जाता है । आप भी भगवान को स्नेह करते रहें । ताज की तरह भगवान आपके साथ चौसर खेलने आवें, यह भावना न कीजिये । वे भगवान तो सदा आपके साथ खेल रहे हैं । ताज को सत्संग नहीं मिला था इसलिये उसे चौसर खेलने के लिये खूब-खूब तपस्याएँ करनी पड़ीं और ठाकुरजी को तकलीफ देनी पड़ी । आप वह तपस्या न भी करेंगे तो चलेगा । चौसर खेलने कन्हैया को न बुलाइये व मायारूप में भी उसे न बुलाइये । चैतन्य आत्मा कन्हैया अथवा गुरुतत्त्व आपके साथ है । उसीमें गोता मारकर अपने चित्त को भगवद्तत्त्व में सराबोर करना चाहिये ।

ताज को जो मिला उससे भी सवाया आपके पास अभी भी वह परमेश्वर मौजूद है । ताज के प्राण तो एक सप्ताह के उपवास के बदले निकले और गौलोक में गये तथा वहाँ की यात्रा करके उसे न जाने कहाँ की यात्रा करनी पड़ी होगी लेकिन आपको तो न गौलोक जाने की जरूरत है, न ही सप्ताह के उपवास की । केवल थोड़े-से नियम से रहें, संयम से खावें और जप-ध्यान में लग जाएँ तो ताज से सवाया आपको मिल सकता है, वह भी हँसते-खेलते क्योंकि आपके पास सत्संग है, संतों का सान्निध्य है । ताज पर तो पतिरूप में मुसलमान राजा का शासन था लेकिन आपके ऊपर तो गुरुदेव की करुणा और कृपा नित्य बरस रही है ।

उठो... और उन कृपाकणों को समेट लो । फिर आप यहीं, इसी जन्म में, मरने के बाद नहीं..., जीते-जी मुक्ति का, आत्मा-परमात्मा की मुलाकात का, सोऽहम् स्वरूप का साक्षात्कार कर लो...

ॐ...ॐ....ॐ...

'ताज ! मुझे तुम पर शक हुआ था । मैंने तुम्हें पापी समझकर खुद एक पाप किया है । आओ, अब मथुरा चलकर तुम्हारे गुरुदेव संत श्री विठ्ठलनाथजी महाराज और ठाकुरजी के दर्शन कर इस पाप को धो डालूँ ।''

❀ झूठ बोलने से अपना हृदय कमजोर होता है ।

❀ स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए । हररोज सत्शास्त्रों का सेवन अवश्य करना चाहिए ।

कथा प्रसंग

शील का माहात्म्य

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एक बार दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से पूछा कि : ''मेरे पास राजयसत्ता है, राजयवैभव है फिर भी मुझे शांति नहीं है और पांडवों के पास राजवैभव और सत्ता नहीं है फिर भी उनके पास शांति और प्रसन्नता है । लोगों के दिल में उनके लिये अत्यधिक आदर है जबकि मेरे लिये अनादर है । उनके चित्त की प्रसन्नता और शांति, उनका यश और आदर देखकर मेरे दिल में जलन होती है । मेरे पास सब कुछ होते हुए भी मैं दुःखी हूँ, जबकि उनके पास विशेष कुछ भी न होने के बाद भी वे सुखी हैं । इसका कारण क्या है ?''

धृतराष्ट्र कहते हैं : ''दुर्योधन ! ऐसी बात पहले स्वर्ग में भी हुई थी । स्वर्गीय सुख के आगे इस जगत के सुख-वैभव का कोई मूल्य नहीं है । फिर भी दैत्यकुल में जिसका जन्म हुआ है, ऐसे प्रह्लाद का सुख-वैभव और शांति इन्द्र से देखे नहीं जाते थे इसीलिये इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से पूछा : ''हे गुरुदेव ! अभी धरती पर दैत्यकुल में प्रह्लाद का जन्म हुआ है । प्रहलाद की प्रसन्नता व सुख-शांति देखकर मुझे अपना इन्द्रपद तुच्छ लगता है । इसका क्या कारण है ?''

बृहस्पति कहते हैं : ''इसका कारण तुम प्रह्लाद के पास जाकर पूछो ।''

देवेन्द्र ब्राह्मण का वेश लेकर प्रह्लाद के पास आकर पूछते हैं : ''हे दैत्यकुलनरेश ! आप चिरंजीवी हों, यशस्वी हों । यह बूढ़ा ब्राह्मण याचक बनकर आपके द्वार आया है । आप भगवान के भक्त हैं अत: याचक की याचना आप पूर्ण करेंगे, इसी आशा के साथ मैं आपके पास आया हूँ । मैं आपसे ज्ञान की याचना करता हूँ ।''

इन्द्रियगत ज्ञान तो इन्द्र के पास बहुत है लेकिन बुद्धिगत ज्ञान और आत्मज्ञान प्रह्लाद के पास अधिक है इसीलिये इन्द्र भी उसके आगे छोटा दिखता है ।

प्रह्लाद पूछते हैं : ''हे ब्राह्मण ! तुम्हें क्या जानना है ?''

> *इन्द्रियगत ज्ञान तो इन्द्र के पास बहुत है लेकिन बुद्धिगत ज्ञान और आत्मज्ञान प्रह्लाद के पास अधिक है इसीलिये इन्द्र भी उसके आगे छोटा दिखता है ।*

ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र कहते हैं : ''आप इतने प्रसन्न और निश्चिंत हैं । आपके आने से दैत्यों की बुद्धि भी बदल गई है तथा सुख-समृद्धि भी बढ़ने लगी है । आपकी शांति, प्रसन्नता और यश चारों ओर छा रहा है । इसका कारण क्या है ?''

प्रह्लाद : ''हे ब्राह्मणदेव ! आपने अति उत्तम प्रश्न किया है लेकिन अभी मुझे अपने राज्य में वेष बदलकर लोगों के दुःख दूर करने जाना है, उनकी समझ बढ़ानी है, इसलिये अभी मेरे पास उत्तर देने का समय नहीं है ।''

> *प्राणीमात्र के प्रति चित्त में अद्रोह रखना चाहिये । व्यवहार में कभी किसीके साथ अनबन हो जाय, फिर भी गहराई में किसीके भी प्रति द्रोह नहीं रखना चाहिये ।*

इन्द्र : ''हे राजन् ! मैं आपकी शरण आया हूँ । जब आपको समय मिले, तब उपदेश देना । तब तक मुझे आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो । मैं आपका जयघोष करूँगा ।'' यह कहकर इन्द्र ने प्रहलाद की सेवा करने की आज्ञा ले ली ।

प्रह्लाद के दरबार में रहते हुए इन्द्र ने उनकी ऐसी सेवा की कि संतुष्ट व खुश होकर प्रह्लाद कहते हैं : ''हे ब्राह्मणदेव ! मैं आपकी सेवा से संतुष्ट हूँ। मेरे पास वैभव और सुखशांति क्यों है ? उसका कारण जानने की कोई आवश्यकता नहीं । मैं आपको आपकी सेवा का फल दिये देता हूँ। मेरे संतोष का कारण शील है । यह शील मैं आपको भेंट में अर्पण करता हूँ।'' इतना कहकर प्रह्लाद ने ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को अपना शील दान में दे दिया ।

जब दान का संकल्प पूर्ण हुआ तो प्रह्लाद के शरीर से एक तेजपुंज निकलकर इन्द्र के शरीर में प्रविष्ट होने के लिए बढ़ा तब प्रह्लाद ने पूछा : ''तुम कौन हो ?''

वह तेजपुंज 'मैं शील हूँ' कहकर ब्राह्मण के शरीर में समा गया । तत्पश्चात् दूसरा तेजपुंज निकला । प्रह्लाद के पूछने पर उसने बताया : ''मैं धर्म हूँ । जहाँ शील रहता है, वहीं मेरा निवास होता है ।'' इतना कहकर वह भी इन्द्र के शरीर में समा गया । इसी प्रकार क्रम से सत्य और व्रत-संयम भी प्रह्लाद के शरीर से निकलकर इन्द्र में समा गये। पाँचवाँ तेजपुंज भी जब इसी प्रकार प्रह्लाद के शरीर से निकलकर इन्द्र की ओर बढ़ा तब प्रहलाद ने पूछा : ''तुम कौन हो ?''

वह तेजपुंज कहता है : ''जहाँ शील होता है, वहाँ धर्म होता है । जहाँ धर्म होता है, वहाँ सत्य होता है । जहाँ सत्य होता है, वहाँ व्रत-संयम होता है । जहाँ व्रत-संयम होता है, वहाँ बल, ऐश्वर्य और लक्ष्मी होती है, अतैव मैं बल, ऐश्वर्य और लक्ष्मी हूँ ।''

इस प्रकार से देवेन्द्र ने शील प्राप्त किया और स्वयं को परम सुखी, ओजस्वी मानने लगा ।

यह कथा जब धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को सुनाई तब दुर्योधन कहता है : ''पिताजी ! वह शील कैसा होगा जिसे पाने के बाद दैत्यशिरोमणि प्रह्लाद शास्त्र और पुराणों में कथा का विषय बन गये ?''

धृतराष्ट्र : ''दुर्योधन ! प्राणीमात्र के प्रति चित्त में अद्रोह रखना चाहिये । व्यवहार में कभी किसीके साथ अनबन हो जाय, फिर भी गहराई में किसीके भी प्रति द्रोह नहीं रखना चाहिये । अपने चित्त में द्रोह रखने से जिसके लिये द्रोह रखा है, उसका कुछ अनर्थ हो या न हो, इसमें शंका है लेकिन द्रोह करने के विचार मात्र से अपने दिल की योग्यता कम होने लगती है, हमारा अहित होने लगता है । ईर्ष्या, द्वेष, झगड़ा, मत्सर आदि करने से अपनी योग्यता और प्रसन्नता नष्ट होती है । हमारी बुद्धिशक्ति एवं बुद्धिगत ज्ञान का ह्रास होता है, इसलिये प्राणीमात्र के प्रति अद्रोह का भाव रखना चाहिये ।

दुर्योधन ! दूसरी मुख्य बात यह है कि कैसी भी परिस्थिति आवे लेकिन चित्त में सदैव समता रखनी चाहिये । सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी, ये सब आने-जानेवाली परिस्थितियाँ हैं । दुःख जब आता है तो पहले क्षण उसका जितना भय लगता है, उसका प्रभाव तीन घंटे पश्चात् यथावत् नहीं रहता अर्थात् कम हो

सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है । अपने दिल में प्रसन्नता रखे तो थोड़े-से प्रयत्न से किया हुआ कार्य भी सफल हो जाएगा । हमारे दिल में निराशा, हताशा, आलस्य, ईर्ष्या होंगे तो बहुत प्रयत्न करने के बाद भी सफलता नहीं मिलेगी ।

मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं विधाता है अतैव भाग्य को कोसना छोड़कर उन्नत और सफल जीवन जीने के लिये अपने मन में अतुलित साहस और आत्मविश्वास जागृत करो । ईश्वर और सद्‌गुरु भी तुमसे यही चाहते हैं ।

जाता है। तीन दिन के बाद तो उसका प्रभाव अत्यल्प रह जाता है और तीन वर्ष के बाद तो वह याद भी नहीं रहता। ऐसे क्षणिक सुख-दुःख में व्याकुल होने से अन्तर्मन की शीलता और समता का ह्रसस होता है। अतैव हमें आत्मज्ञान का ही आदर करना चाहिये। जो आत्मज्ञान का अनादर करता है, उसका मृत्यु भी अनादर करती है तथा वह माता के गर्भ में उल्टा लटकता है। इसलिये बुद्धि गत ज्ञान का आदर करना चाहिये। मनुष्य को चाहिये कि वह प्रत्येक परिस्थिति में चित्त की समता संभाले रखे।

मनुष्य को तीसरी इस बात का सदैव स्मरण रखना चाहिये कि वह सदैव प्रसन्न रहे। सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है। अपने दिल में प्रसन्नता रखे तो थोड़े-से प्रयत्न से किया हुआ कार्य भी सफल हो जाएगा। हमारे दिल में निराशा, हताशा, आलस्य, ईर्ष्या होंगे तो बहुत प्रयत्न करने के बाद भी सफलता नहीं मिलेगी। चित्त में प्रसन्नता से हम जितने आगे बढ़ सकते हैं, उतने हताशा, निराशा, उदासीनता से नहीं बढ़ सकते। दुर्योधन ! मनुष्य जब जीवन में निराश हो जाता है तो वह जीवन की सच्चाइयों से, आत्मतत्त्व से दूर चला जाता है। मनुष्य अपने जीवन में बुरे कर्म करने का निर्णय तब लेता है, जब वह निराश हो जाता है। उस भयानक आपत्ति से छुटकारा पाने के लिये वह कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। फलत: मनुष्य संयम, धैर्य खो बैठता है, अधीर हो जाता है और यही मानसिक निश्चेष्टा उसे कायर बना देती है।

दुर्योधन ! मनुष्य को यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि दुःख की प्रत्येक काली घटा के पीछे आशा का सूर्य भी चमकता रहता है।''

गम की अंधेरी रात में, दिल को न बेकरार कर।
सुबह जरूर आएगी, सुबह का इंतजार कर ॥

निराश, हताश व चिन्तित आदमी तो उस पागल के समान है जो सूरज की ओर पीठ करके सारे संसार को अंधकारमय देख रहा है। केवल इतनी ही आवश्यकता है कि अपना मुँह सूर्य की ओर कर दे, सूर्य के सम्मुख हो जाय। इसलिये उठो और साहस के साथ अंधेरे से प्रकाश की ओर बढ़ चलो। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं विधाता है अतैव भाग्य को कोसना छोड़कर उन्नत और सफल जीवन जीने के लिये अपने मन में अतुलित साहस और आत्मविश्वास जागृत करो। ईश्वर और सद्गुरु भी तुमसे यही चाहते हैं।

बचपन से ही माता-पिता को बच्चों में अच्छे संस्कारों का सिंचन करना चाहिये, जिससे उनका भविष्य तो उज्ज्वल हो ही सके, साथ-ही-साथ समाज व राष्ट्र भी विकास के पथ पर अग्रसर हो सके।

अपने मन में हिम्मत और दृढ़ता का संचार करते हुए अपने-आपसे कहो कि : 'मेरा जन्म परिस्थिति पर विजय प्राप्त करने के लिये हुआ है, पराजित होने के लिये नहीं। मैं ईश्वर का सनातन अंश हूँ। जीवन में सदैव सफलता व प्रसन्नता की प्राप्ति के लिये ही मेरा जन्म हुआ है, असफलता या पराजय के लिये नहीं। मैं अपने मन में हीनता, दीनता और पलायनवादिता के विचार कभी नहीं आने दूँगा। मैं ईश्वर का सनातन चैतन्य अंश हूँ, मैं सद्गुरु का बालक हूँ... किसी भी कीमत पर मैं निराशा के हाथों अपनी शक्तियों का नाश नहीं होने दूँगा।'

''दुर्योधन ! मनुष्य जब ठीक तरह से जीवन व्यतीत करता है, तो उसका जीवन सादगी व सुन्दरता से भर उठता है। जब उसके जीवन में प्रलोभन, लालसा अथवा अभाव प्रवेश कर जाते हैं तो समझो कि वह ठीक तरह से नहीं जी रहा है। लालसाएँ जितनी कम होती जाती हैं, बुद्धि और विकास उसी अनुपात में अधिक होता जाता है।''

इस प्रकार से धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के सम्मुख शील के गुणों की व्याख्या की। पापी दुर्योधन को भी शील प्राप्त करने की इच्छा हुई लेकिन बाल्यावस्था से ही ईर्ष्या के संस्कार उसमें घर कर चुके थे इसलिये महाभारत का युद्ध होकर ही रहा।

अतएवव बचपन से ही माता-पिता को बच्चों में अच्छे संस्कारों का सिंचन करना चाहिये, जिससे उनका भविष्य तो उज्जवल हो ही सके, साथ-ही-साथ समाज व राष्ट्र भी विकास के पथ पर अग्रसर हो सके।

विविध रोगों में आभूषण-चिकित्सा

आजकल की विद्या अधूरी विद्या है । बड़े-बड़े अन्वेषक तथा विज्ञानवेत्ता भी हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों-ब्रह्मवेत्ताओं एवं पूर्वजों द्वारा प्रमाणित अनेक तथ्यों एवं रहस्यों को नहीं सुलझा पाये हैं । पाश्चात्य जगत् के लोग भारतीय संस्कृति के अनेक सिद्धान्तों को व्यर्थ की बकवास बोलकर कुप्रचार करते थे लेकिन अब वे ही शीश झुकाकर उन्हें स्वीकार कर किसी-न-किसी रूप में मानते भी चले जा रहे हैं ।

भारतीय समाज में स्त्री-पुरुषों में आभूषण पहनने की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है । आभूषण धारण करने का अपना एक महत्त्व है, जो शरीर और मन से जुड़ा हुआ है । स्वर्ण के आभूषणों की प्रकृति गर्म है तथा चाँदी के गहनों की प्रकृति शीतल है । यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु में जब किसीके मुँह में छाले पड़ जाते हैं तो प्राय: ठंडक के लिये मुँह में चाँदी रखने की सलाह दी जाती है । इसके विपरीत सोने का टुकड़ा मुँह में रखा जाय तो गर्मी महसूस होगी ।

स्त्रियों पर सन्तानोत्पत्ति का भार होता है । उसकी पूर्ति के लिये उन्हें आभूषणों द्वारा ऊर्जा व शक्ति मिलती रहती है । सिर में सोना और पैरों में चाँदी के आभूषण धारण किये जावें तो सोने के आभूषणों से उत्पन्न हुई बिजली पैरों में तथा चाँदी के आभूषणों से उत्पन्न होनेवाली ठंडक सिर में चली जाएगी क्योंकि सर्दी, गर्मी को खींच लिया करती है । इस तरह से सिर को ठंडा व पैरों को गर्म रखने के मूल्यवान चिकित्सकीय नियम का पूर्ण पालन हो जाएगा । इसके विपरीत यदि सिर में चाँदी के तथा पैरों में सोने के गहने पहने जायें तो इस प्रकार के गहने धारण करनेवाली स्त्रियाँ पागलपन या किसी अन्य रोग की शिकार बन सकती हैं । अतैव सिर में चाँदी के व पैरों में सोने के आभूषण कभी नहीं पहनना चाहिये । प्राचीन काल की स्त्रियाँ सिर पर स्वर्ण के एवं पैरों में चाँदी के वजनी आभूषण धारण कर दीर्घजीवी, स्वस्थ व सुन्दर बनी रहती थीं ।

यदि सिर और पाँव दोनों में स्वर्णाभूषण पहने जावें तो मस्तिष्क एवं पैरों में से एक समान दो गर्म विद्युत धारा प्रवाहित होने लगेगी जिसके परस्पर टकराव से, जिस तरह दो रेलगाड़ियों के आपस में टकराने से हानि होती है, वैसा ही असर हमारे स्वास्थ्य पर भी होगा ।

जिन धनवान परिवारों की महिलाएँ केवल स्वर्णाभूषण ही अधिक धारण करती हैं तथा चाँदी पहनना ठीक नहीं समझतीं, वे इसी वजह से स्थायी रोगिणी रहा करती हैं ।

विद्युत का विधान अति जटिल है । तनिक-सी गड़बड़ में परिणाम कुछ-का-कुछ हो जाता है । यदि सोने के साथ चाँदी की भी मिलावट कर दी जावे तो कुछ और ही प्रकार की विद्युत बन जाती है । जैसे गर्मी से सर्दी के जोरदार मिलाप से सरसाम हो जाता है तथा समुद्रों में तूफान उत्पन्न हो जाते हैं । उसी प्रकार जो स्त्रियाँ सोने के पतरे का खोल बनवाकर भीतर चाँदी, ताँबा या जस्ते की धातुएँ भरवाकर कड़े, हंसली आदि आभूषण धारण करती हैं, वे हकीकत में तो बहुत बड़ी त्रुटि करती हैं । वे सरेआम रोगों एवं विकृतियों को आमंत्रित करने का कार्य करती हैं ।

आभूषणों में किसी विपरीत धातु के टांके से भी गड़बड़ी हो जाती है अत: सदैव टांकारहित आभूषण पहनना चाहिये अथवा यदि टांका हो तो उसी धातु का होना चाहिये जिससे गहना बना हो ।

विद्युत सदैव सिरों तथा किनारों की ओर से प्रवेश किया करती है । अत: मस्तिष्क के दोनों भागों को विद्युत के प्रभावों से प्रभावशाली बनाना हो तो नाक और कान में छिद्र करके सोना पहनना चाहिये । कानों

में सोने की बालियाँ अथवा झुमके आदि पहनने से स्त्रियों में मासिक धर्म संबंधी अनियमितता कम होती है, हिस्टीरिया रोग में लाभ होता है तथा आँत उतरने अर्थात् हार्निया का रोग नहीं होता है । नाक में नथुनी धारण करने से नासिका संबंधी रोग नहीं होते तथा सर्दी-खाँसी में राहत मिलती है । पैरों की अँगुलियों में चाँदी की बिछिया पहनने से स्त्रियों में प्रसवपीड़ा कम होती है, साइटिका रोग एवं दिमागी विकार दूर होकर स्मरणशक्ति में वृद्धि होती है । पायल पहनने से पीठ, एड़ी एवं घुटनों के दर्द में राहत मिलती है, हिस्टीरिया के दौरे नहीं पड़ते तथा श्वास रोग की सम्भावना दूर हो जाती है । इसके साथ ही रक्तशुद्धि होती है तथा मूत्ररोग की शिकायत नहीं रहती ।

मानवीय जीवन को आनन्दमय बनाने के लिये वैदिक रस्मों में सोलह श्रृंगार इसीलिये अनिवार्य करार दिये गये हैं, जिसमें कर्णछेदन तो अति महत्त्वपूर्ण है । प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह लड़का हो या लड़की, तीन से पाँच वर्ष की आयु में दोनों कानों का छेदन करके जस्ता या सोने की बालियाँ प्राचीनकाल में पहना ही दी जाती थीं । इस विधि का उद्देश्य अनेक रोगों की जड़ें बाल्यकाल ही में उखाड़ देना था । अनेक अनुभवी महापुरुषों का कहना है कि इस क्रिया से आँत उतरना, अंडकोष बढ़ना तथा पसलियों के रोग नहीं होते हैं । छोटे बच्चों की पसली बार-बार उतर जाती है उसे रोकने के लिये नवजात शिशु जब छः दिन का होता है तब परिजन उसे हंसली और कड़ा पहनाते हैं । कड़ा पहनने से शिशु के सिकुड़े हुए हाथ-पैर भी गुरुत्वाकर्षण के कारण सीधे हो जाते हैं । बच्चों को खड़े रहने की क्रिया में भी कड़ा बलप्रदायक होता है ।

यह मान्यता भी है कि मस्तक पर बिंदिया अथवा तिलक लगाने से चित्त की एकाग्रता विकसित होती है तथा मस्तिष्क में पैदा होनेवाले विचार असमंजस की स्थिति से मुक्त होते हैं । आजकल बिन्दिया में सम्मिलित लाल तत्त्व पारे का लाल आक्साइड होता है जो कि शरीर के लिये लाभप्रदायक सिद्ध होता है । बिन्दिया एवं शुद्ध सिन्दूर तथा शुद्ध चंदन के प्रयोग से मुखमंडल झुर्रीरहित बनता है । माँग में टीका पहनने से मस्तिष्क-संबंधी क्रियाएँ नियंत्रित, संतुलित तथा नियमित रहती हैं एवं मस्तिष्कीय विकार नष्ट होते हैं लेकिन आजकल जो केमिकल की बिंदिया चल पड़ी हैं वे लाभ के बजाय हानि करती हैं ।

हाथ की सबसे छोटी अँगुली में अँगूठी पहनने से छाती का दर्द व घबराहट से रक्षा होती है तथा ज्वर, कफ, दमा आदि के प्रकोपों से बचाव होता है । स्वर्ण के आभूषण पवित्र, सौभाग्यवर्धक तथा संतोषप्रदायक हैं । रत्नजड़ित आभूषण धारण करने से ग्रहों की पीड़ा, दुष्टों की नजर एवं बुरे स्वप्नों का नाश होता है । शुक्राचार्य के अनुसार पुत्र की कामनावाली स्त्रियों को हीरा नही पहनना चाहिये ।

- संकलनकर्त्ता : सद्गुरु का साधक

(पृष्ठ ११ का शेष)

न करें ।' ऐसी प्रार्थना क्यों नहीं करता ? ऐसा भाव लेकर क्यों नहीं घूमा ? तू निंदकों और दुष्टों की बातों से प्रभावित होकर दुष्ट भाव लेकर घूमा और दुष्ट काम करने को उद्यत हो रहा है । इससे तो सत्संगियों के संग एवं सज्जनों की बातों से अपने जीवन को आबाद क्यों नहीं करता ? शुभ भाव लेकर घूमेगा तो तुझे पुण्य होगा और दुष्ट भाव लेकर घूमेगा तो मुझे तो कुछ नहीं होगा लेकिन तेरी हानि अवश्य होगी । किसीके लिये बुरा सोचना पाप है लेकिन संत के लिये तो बुरा सोचना महा पाप है ।''

संत सताए तीनों जाए तेज बल और वंस ।
ऐड़ा-ऐड़ा कई गया, रावण कौरव कैरो कंस ॥

वह आदमी इतना गया-गुजरा तो नहीं था । थोड़ी सज्जनता शेष थी उसमें । संतों का थोड़ा-बहुत सत्संग भी वह सुनता था । संत की बात उसके दिल में उतर गई । वह मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा 'हे प्रभु ! मेरी बुद्धि बदल दे । मेरा सोचने का ढंग बदल दे ।' वह स्वयं भी प्रयत्नपूर्वक शुभ भाव के चिंतन और शुभकर्म में लगा रहा । देखते-ही-देखते उसके मन, बुद्धि बदल गये । वह सच्चिदानंदघन परमात्मा को पाने के रास्ते पर आगे ही आगे कदम रखता गया और सफल होता गया और प्रेमस्वरूप परमात्मा को उसने पा लिया । अब तो उसके हृदय से ऐसा प्रेम छलकने लगा कि उसके दीदार करनेवाले भी प्रेम सरिता में बहते हुए परमात्मप्रेम का आनंद पाने लगे ।

सुन्दरदास ने ठीक ही कहा है कि :

प्रेम भक्ति यह मैं कही जाने बिरला कोई ।
हृदय कलुषता क्यों रहे, जा घट ऐसी होई ॥

मूक होई बाचाल...

मूक होई बाचाल पंगु चढ़ई गिरिबर गहन ।

शिशु सरस्वती जन्म से ५-६ महीने तक तो स्वस्थ रही किन्तु धीरे-धीरे उसका शरीर कृश होता गया । ढाई वर्ष की होने पर भी उसे बोलते एवं चलते न देखकर हम पति-पत्नी अत्यंत चिंतित हो उठे और शुरू हो गये अस्पतालों के चक्कर । न जाने किस-किस डॉक्टर को बताया, कितनी ही दवाएँ कीं किन्तु सब व्यर्थ । पैसा पानी की तरह बहाया । अंत में तो डॉक्टरों ने भी जवाब दे दिया कि इसका ठीक होना संभव नहीं ।

हम निराशा की खाई में गिरने लगे । किन्तु गहन अंधकार में भी कहीं-न-कहीं से प्रकाश की एक किरण मिल ही जाती है एवं वह किरण मिलती है संतों के पास से । हमारे साथ भी यही हुआ ।

गत तीन वर्ष पूर्व परम पूज्य गुरुदेव का सत्संग-लाभ प्राप्त हुआ । तभी हमें लगा कि मानो निराशा के सागर में डूबते हम लोगों को एक किनारा मिल गया । हम दोनों ने पूज्यश्री से दीक्षा ले ली ।

दीक्षा के बाद हमने अहमदाबाद आश्रम में स्थित 'बड़ बादशाह' की परिक्रमा की एवं मनौति मानी कि यदि हमारी पुत्री ठीक हो जायेगी तो हम हर रविवार को अहमदाबाद स्थित आश्रम में पैदल चलकर आयेंगे ।

हम पहले रविवार को आये । तभी चमत्कार हुआ । दूसरे रविवार को हमारी बेटी अपने-आप उठकर पलंग पर बैठ गई । पू. बापू की इस अहैतुकी कृपा से अभिभूत होकर हमने बुधवार को भी पैदल चलकर आने का निर्णय लिया ।

सरस्वती धीरे-धीरे स्वस्थ होती गयी । ३-४ महीने बाद तो उसने बोलना प्रारंभ कर दिया और वह भी **'हरि ॐ'** शब्द से । अब वह ठीक से चलने लगी है और यदा-कदा हमारे साथ पैदल चलकर आश्रम भी आ जाती है । जो बिस्तर से उठ नहीं सकती थी वह २० किलोमीटर पैदल चलने लगी । यह पूज्यश्री की असीम कृपा नहीं तो और क्या है ? धन्य गुरुदेव...

उसे अन्य नाम लेने में तो थोड़ी कठिनता होती है किन्तु पूज्य बापू का नाम बड़ी शीघ्रता से बोल लेती है । अपने समवयस्क बच्चों के साथ मिलकर 'हरि ॐ' की धुन करवाने लगी है । गूंगे को वाणी और अपंग को चलने की शक्ति मिली, यह चमत्कार देखकर परिवार के अन्य लोग जो साधु-संतों के नाम का विरोध करते थे वे भी अब मानने लगे हैं । हमारे जीवन में भी मानो नयी रौनक आ गयी है । पूज्यश्री के कृपा-प्रसाद से जीवन साधना-पथ पर तीव्र गति से आगे बढ़ता जा रहा है । गुरुदेव ! आपने तो निहाल कर दिया...

- रमेशभाई पटेल

ब्लॉक : २२९, कमरा : २७/४३, गांधी वसाहत, गोता हाउसिंग बोर्ड, गांधीनगर रोड, अहमदाबाद ।

❀

आलंदी में पूज्यश्री के दिव्य दर्शन

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध तीर्थ-क्षेत्र आळंदी में अपने भक्तों की, साधकों की प्रार्थना-पुकार को सुनकर पूज्यपाद सद्गुरुदेव द्वारा दर्शन देने की बात कई बार सुनी-पढ़ी है । किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि जिन्होंने पूज्यश्री को कभी देखा तक नहीं था ऐसे महाराज ज्ञानेश्वर की समाधि-मन्दिर के पुजारी श्री पांडुरंग रणदिवे को मन्दिर में ही पूज्यश्री के दिव्य-दर्शन का

सौभाग्य प्राप्त हुआ । उन्हीं के शब्दों में :

''दिनांक : ३०-१२-१९९५ को दोपहर १२ बजे मन्दिर में कोई नहीं था । सभी दर्शनार्थी दर्शन करके जा चुके थे । मैं अकेला मन्दिर में सफाई कर रहा था । इतने में ही मुख्य प्रवेशद्वार से, जो कि अभी खुला ही था, श्वेतवस्त्रधारी एवं अलौकिक तेजपुंज से युक्त सफेद दाढ़ीवाले बाबाजी अचानक मन्दिर में प्रविष्ट हुए । उनको देखकर ऐसा लगता था मानो सतयुग के कोई आत्मा-परमात्मा के स्वात्मानंद में रमण करनेवाले ब्रह्मनिष्ठ संत मेरे सम्मुख हों । कुछ देर समाधि की ओर गौर से देखकर वे बोले : अब हम चलते हैं । फिर वह जैसे आये थे वैसे ही चले गये । इस घटना के घटित होने के कुछ ही समय पश्चात् भागवत कथाकार रमेशभाई ओझा ने मन्दिर में प्रवेश किया । तब मैंने उनको कहा कि यदि आप कुछ ही समय पहले आये होते तो आप भी परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के दिव्य दर्शन का लाभ उठा पाते ।''

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों एवं एजेन्ट बन्धुओं से अनुरोध

(१) 'ऋषि प्रसाद' की सदस्यता के लिए नये सदस्यता शुल्क के अनुसार भेजे गये मनीऑर्डर/ड्राफ्ट ही स्वीकार किये जाएँगे, पुरानी दर के नहीं । सदस्यता शुल्क के नये दर इस प्रकार हैं : भारत, नेपाल व भूटान में **वार्षिक :** द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. ३०. मासिक संस्करण हेतु : रू. ५०. **आजीवन :** द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. ३००. मासिक संस्करण हेतु : रू. ५०० (२) अपनी सदस्यता का नवीनीकरण कराते समय मनीऑर्डर फार्म पर 'संदेश के स्थान' पर 'ऋषि प्रसाद' के लिफाफे पर आया हुआ आपके पते वाला लेबल चिपका दें । (३) 'पाने वाले का पता' में 'ऋषि प्रसाद सदस्यता हेतु' अवश्य लिखें । (४) पते में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की सूचना प्रकाशन तिथि से एक माह पूर्व भिजवावें अन्यथा परिवर्तन अगले अंक से प्रभावी होगा । (५) जिन सदस्यों को पोस्ट द्वारा अंक मिलता है उनको विनंती है कि अगर आपको अंक समय पर प्राप्त न हो तो पहले अपनी नजदीकवाली पोस्ट ऑफिस में ही पूछताछ करें । क्योंकि अहमदाबाद कार्यालय से सभी को समय पर ही अंक पोस्ट किये जाते हैं । पोस्ट ऑफिस में तलास करने पर भी अंक न मिले तो उस महीने की २० तारीख के बाद अहमदाबाद कार्यालय को जानकारी दें । (६) 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय से पत्रव्यवहार करते समय कार्यालय के पते के ऊपर के स्थान में संबंधित विभाग का नाम अवश्य लिखें । ये विभिन्न विभाग इस प्रकार हैं :

(A) अनुभव, गीत, कविता, भजन, संस्था समाचार, फोटोग्राफ्स एवं अन्य प्रकाशन योग्य सामग्री 'सम्पादक-ऋषि प्रसाद' के पते पर प्रेषित करें । **(B)** पत्रिका न मिलने तथा पते में परिवर्तन हेतु 'व्यवस्थापक-ऋषि प्रसाद' के पते पर संपर्क करें । **(C)** साहित्य, चूर्ण, कैसेट आदि प्राप्ति हेतु 'श्री योग वेदान्त सेवा समिति के पते पर संपर्क करें । **(D)** साधना संबंधी मार्गदर्शन हेतु 'साधक विभाग' पर लिखें । **(E)** स्थानीय समिति की मासिक रिपोर्ट, सत्प्रवृत्ति संचालन की जानकारी एवं समिति से संबंधित समस्त कार्यों के लिये 'अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति' के पते पर लिखें । **(F)** स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त प्रकार के पत्रव्यवहार 'वैद्यराज, सांई लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहाँगीरपुरा, सूरत (गुजरात) के पते पर करें । (७) आप जो राशि भेजें वह इन विभागों के मुताबिक अलग-अलग मनीऑर्डर या ड्राफ्ट से ही भेजें । अलग-अलग विभाग की राशि एक ही मनीऑर्डर या ड्राफ्ट में कभी न भेजें ।

जो भगवान का प्यारा बन जाता है वह कुटुम्ब का भी प्यारा होता है, समाज का भी प्यारा होता है । जो भगवान को छोड़कर अपने कुटुम्बियों के लिए सब कुछ करता है उसको कुटुम्बी भी आखिर ठुकराते हैं ।

संस्था-समाचार

कलकत्ता : भारत के इस महानगर में 'मुक्तिधाम मैदान' में दिनांक ३ से ८ फरवरी तक पू. बापू के पावन सान्निध्य में दिव्य सत्संग-समारोह का आयोजन हुआ, जिसमें दूर-दूर के इलाकों से आये भक्त-समुदाय ने इस महानगर के अशांति, कोलाहल एवं प्रदूषण भरे वातावरण को छोड़कर पूज्यश्री की अमृतमयी वाणी का रसपान करके आनंद और शांति का अनुभव किया ।

दिनांक ४ फरवरी को पूर्णिमा का दिन होने की वजह से देश के कोने-कोने से अनेकों पूर्णिमा व्रतधारी साधक, जिनमें से कोई ३८ घण्टे, कोई ४० घण्टे तो कोई ४८ घण्टे का सफर तय करके अपने प्यारे, प्रेमाभक्ति के दाता पू. गुरुदेव के दर्शनार्थ इस महानगरी में पहुँचे । लम्बी मुसाफरी में ऐसे व्रतधारियों का तन भले ही बस या रेल में मशगूल हो किन्तु मन तो मालिक के द्वार की मुसाफरी में मशगूल होता है । धन्य है उनका गुरु-प्रेम !

दिनांक ६ फरवरी को समिति ने गुरुभक्ति के भजनों से संपूरित नई कैसेट 'गुरु आराधना' का उद्घाटन पूज्यश्री के पावन करकमलों से कराया ।

बिलासपुर : दिनांक ८ फरवरी की शाम को कलकत्ता में पूज्यश्री के सत्संग - समारोह का समापन हुआ । दिनांक ९ फरवरी की सुबह डमडम हवाई अड्डे से पूज्यश्री ने बिलासपुर के लिए प्रस्थान किया । इस बीच रायपुर हवाई अड्डे पर एक घण्टे के लिए ही सही, भाविक भक्त अपने पू. गुरुदेव के दर्शन करके भावविभोर हो उठे । उसी दिन शाम को पूज्यश्री का शुभागमन बिलासपुर की धरा पर हुआ । यहाँ की सौभाग्यशाली जनता दिनांक १० से १२ फरवरी तक पूज्यश्री के पावन मुखारविन्द से निःसृत ज्ञानगंगा में अवगाहन करके धन्य हो गयी । सत्संग के प्रथम दिवस ही सुबह से हो रही बारिश के कारण प्रवचन-स्थल की सारी व्यवस्थाएँ अस्त-व्यस्त होने के बावजूद भी, भारी तादाद में श्रद्धालु जनता खड़े रहकर पू. बापू द्वारा की गई सत्संग-वर्षा का रसपान किया । ऊपर से होनेवाली बारिश उनके तन को भिगो रही थी किन्तु पूज्यश्री की अमृतमयी ज्ञानवर्षा तो उनके दिलों को पावन कर रही थी ।

दिनांक १२ फरवरी को बिलासपुर से उज्जैन के लिए प्रयाण करते समय मार्ग में भोपाल के आश्रम में कुछ समय तक रहकर पूज्यश्री ने वहाँ दर्शनार्थ एवं सत्संग-श्रवणार्थ आये हुए हजारों लोगों को अपनी अनुभवसम्पन्न योगवाणी का अमृतपान कराया ।

उज्जैन : महाकाल की इस पावन नगरी में नवनिर्मित संत श्री आसारामजी आश्रम में दिनांक : १५ से १८ फरवरी तक पू. बापू के सान्निध्य में वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर एवं दिनांक १७ फरवरी को महाशिवरात्रि महोत्सव का आयोजन हुआ । शहर के कोलाहल से दूर इस एकान्त क्षेत्र में पूज्यश्री के सत्संगामृत का पान करने के लिए समीपस्थ क्षेत्रों से हजारों - हजारों भक्तों का काफिला प्रतिदिन आता एवं सत्संग वर्षा से सराबोर होकर आनंद एवं प्रेम के भाव लिए हुए लौटता । सत्संग के दूसरे दिन ही शिविरार्थी एवं सत्संग-प्रेमियों से सत्संग-मंडप खचाखच भर गया एवं हजारों लोग सत्संग-मंडप के बाहर खड़े होकर भी पूज्यश्री की पीयूषवर्षी वाणी का लाभ लेते रहे ।

महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर श्री योग वेदान्त सेवा समिति ने पूज्यश्री के सत्संग-प्रवचनों की सात नई कैसेटों का उद्घाटन पूज्यश्री के ही पावन करकमलों द्वारा करवाया, जिनके नाम हैं : (१) नाचे मनमयूर लवलेश पाये (२) जड़, चेतन ब्रह्म का अर्थस्वरूप (३) वेदान्त की गरिमा (४) आपका सच्चा रूप (५) गुरुसेवा का फल (६) उत्तम आभूषण (७) शिवरात्रि (अहोरात्रि)

मनावर : मनावर के सेमल्दा रोड़ पर स्थित संत श्री आसारामजी आश्रम में पू. बापू की ज्ञान-भक्ति एवं योग संपन्न वाणी से आदिवासियों समेत हजारों श्रोता लाभान्वित हुए ।

यहाँ दिनांक १६ से १८ फरवरी तक सुरेश ब्रह्मचारीजी के सत्संग का आयोजन किया गया था । दिनांक १६ से २० फरवरी तक इस क्षेत्र के पिछड़े इलाकों में भण्डारे का भी आयोजन हुआ जिसमें आम आदिवासियों को भोजन एवं दक्षिणा प्रदान की गई ।

पू. बापू के सत्संग कार्यक्रम

(१) सूरत आश्रम में होली शिविर : दिनांक : २ से ५ मार्च **विद्यार्थी शिविर** दिनांक : ५ से ७ मार्च ९६. संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहाँगीरपुरा, सूरत। फोन : ६८५३४१.

(२) बापूनगर-अहमदाबाद में दिव्य सत्संग-अमृतवर्षा : दिनांक : ९ से १२ मार्च ९६. सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०. नारायणधाम, लालबहादुर शास्त्री स्टेडियम, बापूनगर। सम्पर्क फोन : २७४८३८५, ७४५३०४८, २८९१७१४, ६७४२४३३. आश्रम फोन : ७४८६३१०, ७४८६७०२.

(३) लीमखेड़ा (जि. पंचमहाल, गुज.) में सत्संग सरिता दिनांक : १३ और १४ मार्च ९६. सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०. हस्तेश्वर धाम, झालोद रोड़। संपर्क : २२६२६, २२५५०. दिनांक : १४ को प्रात: ८-३० बजे महाकाली मंदिर की प्राण-प्रतिष्ठा एवं गुरुमंदिर का उद्‌घाटन पूज्यश्री के पावन करकमलों द्वारा होगा।

(४) अहमदाबाद आश्रम में चेटीचंड शिविर : दिनांक : १७ से २० मार्च ९६. संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-५. फोन : ७४८६३१०, ७४८६७०२.

(५) इन्दौर में चेटीचंड महोत्सव : दिनांक : २१ से २४ मार्च ९६. सुबह ९ से ११-३० शाम ४ से ६. दशहरा मैदान, अन्नपूर्णा रोड़। सम्पर्क फोन : ४७८०३१, ६३०६८, ५३३५८७, ६२८२६.

(६) ग्वालियर में दिव्य ज्ञान अमृतवर्षा : दिनांक : २७ से ३१ मार्च ९६. सुबह ९-३० से १२ शाम ३-३० से ६. फूलबाग मैदान, ग्वालियर। सम्पर्क फोन : ३२७१३७, ३२६००७, ३२५८६३.

(७) दिल्ली में द्वितीय विश्वशांति सत्संग समारोह : दिनांक : ४ से ९ अप्रैल ९६. सुबह ९-३० से १२ शाम ३-३० से ६. लाल किला मैदान, दिल्ली। सम्पर्क फोन : ५७२९३३८, ५७६४१६१. आश्रम : संत श्री आसारामजी आश्रम, अपर रिज रोड़, रवीन्द्र रंगशाला के सामने, नई दिल्ली-६०. फोन : ५७२९३३८, ५७६४१६१

गुरुभक्तियोग

(१) अपने गुरु की क्षतियाँ न देखो। अपनी क्षतियाँ देखो और उन्हें दूर करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो।

(२) गुरु की कसौटी करना मुश्किल है। एक कबीर ही दूसरे कबीर को पहचान सकता है। अपने गुरु में ईश्वर के गुणों का आरोपण करो। तभी आपको लाभ होगा

(३) जिनके सान्निध्य में आपको आध्यात्मिक उन्नति महसूस हो, जिनके वक्तव्य से आपको प्रेरणा मिले, जो आपके संशयों को दूर कर सकें, जो काम, क्रोध, लोभ से मुक्त हों, जो नि:स्वार्थ हों, प्रेम बरसानेवाले हों, जो अहंपद से मुक्त हों, जिनके व्यवहार में गीता, भागवत, उपनिषदों का ज्ञान छलकता हो, जिन्होंने प्रभुनाम की प्याऊ लगाई हो उन्हें आप गुरु करना। ऐसे जागृत पुरुष के शरण की खोज करना।

(४) गुरु के पास जाने के लिए आप योग्य अधिकारी होने चाहिए। आपमें वैराग्य की भावना, विवेक, गांभीर्य, आत्मसंयम एवं सदाचार जैसे गुण होने चाहिए।

(५) अगर आप ऐसा कहेंगे कि 'अच्छा गुरु कोई है ही नहीं' तो गुरु भी कहेंगे कि 'कोई अच्छा शिष्य है ही नहीं।' आप शिष्य की योग्यता प्राप्त करें तो आपको सद्‌गुरु की योग्यता, महत्ता दिखेगी और समझ में आयेगी।

(६) गुरु आपके उद्धारक एवं संरक्षक हैं। सदैव उनकी पूजा करो, उनका आदर करो।

(७) जो सत्, चित् और परमानन्दस्वरूप हैं ऐसे गुरु को सदा साष्टांग प्रणाम करो।

(८) शिष्य को अपने गुरु की मूर्ति सदा स्मरण में रखना चाहिए, गुरु के पवित्र नाम का सदा जप करना चाहिए, उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। इसीमें साधना का रहस्य निहित है।

(९) शिष्य को गुरु की पूजा करना चाहिए क्योंकि गुरु से बड़ा और कोई नहीं है।

(१०) गुरु के चरणामृत से संसारसागर सूख जाता है और मनुष्य आवश्यक आत्मसम्पत्ति प्राप्त कर सकता है।

(११) गुरु का चरणामृत शिष्य की तृषा शान्त कर सकता है।

भाजपा के वरिष्ठ नेता श्री अटलविहारी वाजपेयी पानीपत में पूज्य बापू के दर्शनलाभ लेते हुए...

परम पूज्य गुरुदेव की चरणपादुका पर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए केन्द्रिय ग्रामीण विकास मंत्री श्री उत्तमभाई पटेल।

हरियाणा सरकार के वित्तमंत्री श्री मांगेराम गुप्ता व पर्यटन मंत्री श्री लीलाकृष्ण पूज्य बापू की पीयूषवाणी का रसपान करते हुए। (पानीपत)

पश्चिम बंगाल की धरती पर कलकत्ता शहर में पूज्य बापू की पीयूषवाणी से प्रभुभक्ति में निमग्न असंख्य बंगालवासी।

छा गई अलबेली मस्ती,
जब पधारे सद्गुरु द्वार हमारे... (पानीपत, हरियाना सत्संग)